

PK 3799

.C37K3

1888

FT MEADE  
ASIAN

1328













1397  
WEBER COLLECTION  
253/1  
1880

# KAUMUDI-SUDHĀKARA

## A PRAKĀRANA.

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA CHANDRAKĀNTA TARKĀLANKĀRA,  
PROFESSOR, SANSKRIT COLLEGE, CALCUTTA.

*Published at the expense of*  
**HARACHANDRA CHAUDHURI,**  
*Zemindar, Sherepur, Mymensing.*

कौमुदीसुधाकरं

नाम

प्रकरणम् ।

राजकीयसंस्कृतविद्यालयाध्यापक-महामहोपाध्याय-  
श्रीचन्द्रकान्ततर्कालङ्कारविरचितम् ।

सेरपुरनगरवास्तव्येन

श्रीहरचन्द्रचतुर्धुरीणेन

स्वपुत्रविवाहोत्सवे प्रकाशितम् ।

कलिकाताराजधान्यां

वाग्निस्त्रभिशनयन्त्रे मुद्रितम् ।

शकाः १८१० ।

CALCUTTA :

PRINTED BY G. H. ROUSE, BAPTIST MISSION PRESS.

1888.





# KAUMUDI-SUDHAKARA

A

## PRAKARANA.

BY

MAHÁMAHOPÁDHYÁYA CHANDRAKÁNTA TARKÁLANKÁRA,  
PROFESSOR, SANSKRIT COLLEGE, CALCUTTA.

*Published at the expense of*

**HARACHANDRA CHAUDHURI,**  
*Zemindar, Sherepur, Mymensing.*

~~~~~

CALCUTTA :

PRINTED BY G. H. ROUSE, BAPTIST MISSION PRESS.

1888.



WEBER COLLECTION.

1328

Candrakānta-tarkālakāra.

११

Kaumudī-Budhākaram.

# कौमुदीसुधाकरं

नाम

प्रकरणम् ।



राजकीयसंस्कृतविद्यालयाध्यापक-

महामहोपाध्याय-

श्रीचन्द्रकान्ततर्कालङ्कारविरचितम् ।



सेरपुरनगरवास्तव्येन

श्रीहरचन्द्रचतुर्धुरीणेन

सप्तविवाहोत्सवे प्रकाशितम् ।



कलिकाताराजधान्यां

वाग्निस्तमिशनयन्त्रे

मुद्रितम् ।



शकाः १८१० ।

शाका. 1810 [1888]

PK3799

C37K3

1888

Orien

ans

01500

'05



## विज्ञापनम् ।

मातुरङ्गेशयस्य स्तनन्धयस्य करेण चन्द्रमसो ग्रहणेच्छावदन्तर्या-  
मिप्रेरणया ममापि तनुवाग्विभवस्य हृदये ग्रन्थनिर्माणाय मतिरुदया-  
सीत् । “न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते”—इति न्यायेन उत्कटेच्छावेगं  
नियमयितुरपारयता भगवत्प्रेरितेनैव मया कतिचिद्ग्रन्था निर्मिताः  
सन्ति । तेषु तावत् गोभिलगृह्यसूत्रभाष्यं गृह्यासङ्ग्रहभाष्यं श्राद्धकल्प-  
भाष्यञ्चेति ग्रन्थत्रयमस्यातिक्रममाजैर्मुद्रितमभूत् । प्रबोधशतकं सती-  
परिणयञ्चेति ग्रन्थद्वयं धर्मैकतानहृदयेन संस्कृतविद्यावता सेरपुरनगर-  
स्थान्यतमभूस्वामिना श्रीमद्गोविन्दकुमारचतुर्धुरीणमहाशयेन प्रचा-  
रितम् । वैशेषिकभाष्यन्तु सेरपुरनगरवास्तव्यस्य श्रीयुतराधावल्लभ-  
चतुर्धुरीणमहाशयस्य प्रयत्नेन संस्कृतविद्यानिष्णातस्य कस्यचिद्वन्धुव-  
र्यस्य व्ययेन च मुद्रितमस्ति । स किल बन्धुवर्यो महाशयः नेच्छति  
स्वनामख्यापनमिति नात्र तदुल्लेखः कृतः । तत्त्वावलिरानन्दतरङ्गिणी  
चेति ग्रन्थद्वयं मयैव कथञ्चिदायासेन मुद्रितम् । अवशिष्टानां  
ग्रन्थानां मुद्राद्ययोपयोगिनोऽर्थस्याभावात् तन्मुद्रणादौ निवृत्ताभि-  
लाषणवासम् । तदेवं हतोत्साहोऽहं ग्रन्थान्तरनिर्माणे प्रारब्ध-  
ग्रन्थानामसम्पूर्णानां सम्पूर्णे च कमपि यत्नं नाकरवम् । एवं गते  
सेरपुरनगरवास्तव्येनान्यतमभूस्वामिना विद्योत्साहिना संस्कृतानुरा-  
गिणा वदान्येन श्रीमता हरचन्द्रचतुर्धुरीणमहाशयेन मदीयानां  
सर्वेषामेव ग्रन्थानां प्रचारव्ययादिप्रदानाय प्रतिश्रुतवता महान्त-

मुत्साहं प्रापितोऽस्मि । आशास्महे भगवतः प्रसादादसम्पूर्णानां  
प्रारब्धग्रन्थानां सम्पूर्तिरिदानीं सम्पत्स्यते इति ।

तत्र तावत् कौमुदीसुधाकरं नाम प्रकरणमिदं स्वसुतयोः  
श्रीमतोरायभृतोर्हेमचन्द्र-चारुचन्द्रयोर्बिवाहोत्सवे तेनैव प्रचारितम् ।  
प्रार्थये त्वत्र किमपि दृष्टिपातं सहृदयानाम् । परमत्र यद्यदसङ्गतं  
लक्ष्यते, तत्तत् कृपया शोधनीयं विद्वद्भिः । विक्रमोर्व्वशीस्थस्य पुरू-  
रवसउन्मादवर्णनस्यातिरमणीयतया तद्गीत्यैवात्र सुधाकरस्योन्माद-  
उपवर्णितः, - इति शिवम् ।

ययोर्बिवाहोत्सवएतदासीत्  
प्रचारितं तौ सहितौ वधूभ्याम् ।  
स्यातामविघ्नं चिरजीवनाब्धौ  
कुर्यात्तयोर्मङ्गलमीश्वरोऽपि ॥

अन्येऽपि धनिनस्तावत् सुतोद्वाहादिमङ्गले ।

आचरन्तु महात्मानएतादृशमहोत्सवम् ॥

कलिकातामहानगर्यां  
राजकीयसंस्कृतविद्यालयात् ।  
आषाढे मासि । शाकाः १९१० ।

सेरपुरनगरवास्तव्यस्य  
श्रीचन्द्रकान्तशर्माणः ।

# शुद्धिपत्रम् ।

—०००००—

| पृष्ठ | पंक्तौ | अशुद्धम् ।                      | शुद्धम् ।                         |
|-------|--------|---------------------------------|-----------------------------------|
| ९     | ... ११ | खडाङ्ग                          | खडाङ्ग                            |
| ११    | ... २  | पल्व                            | पल्ल (एवं परत्र)                  |
| ११    | ... २  | राङ्गिक                         | राङ्गिक (एवं परत्र)               |
| १३    | ... २  | कटः                             | कटाः                              |
| २९    | ... ९  | मुपैहि                          | मुपेहि                            |
| ३०    | ... १९ | निवृत्त                         | निवर्त्त                          |
| ३१    | ... १५ | सस्पृह                          | सस्पृह                            |
| ३२    | ... ११ | समावस्थ                         | समावस्था                          |
| ३५    | ... १३ | स्तान                           | सान                               |
| ३९    | ... १८ | ऽङ्गेष                          | ऽङ्गेषु                           |
| ४१    | ... १८ | सुन्दर्यै                       | सुन्दर्यै                         |
| ४२    | ... ७  | कामयमाना                        | कामयाना                           |
| ४६    | ... १३ | कम्पि                           | किम्पि                            |
| ४६    | ... १७ | अलीकशङ्किते                     | अलीकशङ्किते                       |
| ४७    | ... १३ | कमपि                            | किमपि                             |
| ५१    | ... २० | कधिक                            | मधिक                              |
| ५२    | ... ३  | ज्वर                            | ज्वर                              |
| ५२    | ... ७  | ज्वलति                          | ज्वलति                            |
| ५२    | ... १५ | किमनोपचारपरि-<br>अमेण क्लिश्यते | किमनेनोपचारपरि-<br>अमेण क्लिश्यते |
| ५५    | ... २० | गृह्णातु                        | गृह्णातु                          |
| ५७    | ... १७ | धर्मकतानन्तरः                   | धर्मकतानान्तरः                    |
| ६४    | ... १५ | ततः प्रविशति सुधाकरः            | * * * *                           |
| ६५    | ... ८  | सच्चरन्                         | विचरन्                            |
| ७१    | ... ८  | धम्म                            | धम्म                              |
| ७७    | ... १  | अमुन-                           | अमुने-                            |
| ७९    | ... २  | शस्य                            | शष्य                              |

| शृष्टे  | पंक्तौ | अशुद्धम् ।            | शुद्धम् ।            |
|---------|--------|-----------------------|----------------------|
| ७९ ...  | १४ ... | रच्चना                | वच्चना               |
| ८० ...  | १५ ... | क्रमाना               | क्रमाणा              |
| ८१ ...  | १५ ... | अस्मद्विधैयै-         | अस्मद्विधानां प्र-   |
| ८२ ...  | १ ...  | आकण्य                 | आकर्ण्य (एवं परत्र)  |
| ८४ ...  | १३ ... | धिणोति                | धिनोति               |
| ९० ...  | २ ...  | मवै                   | मवे                  |
| ९४ ...  | १८ ... | राधिणं                | राधिनं               |
| १०८ ... | ६ ...  | क्षमापनीयः            | क्षमयितव्यः          |
| ११५ ... | ६ ...  | क्वदानीं              | क्वोदानीं            |
| ११५ ... | २१ ... | अथते                  | श्रूयते              |
| ११७ ... | १३ ... | लतामि                 | लतामिव               |
| ११८ ... | २० ... | जलदः                  | जलदैः                |
| १२३ ... | १५ ... | सामाजिके              | सामाजिकौ             |
| १२५ ... | १३ ... | स्नायते नतु           | स्नायत्येव न         |
| १२९ ... | १९ ... | अव्याहृतं मन्त्रमेतत् | अव्याहृतो मन्त्र एषः |
| १४५ ... | ५ ...  | भगवतो                 | भगवतः                |
| १४५ ... | ७ ...  | प्रात्यङ्घ्यातः       | प्रत्याङ्घ्यातः      |
| १४५ ... | १६ ... | काका                  | कापा                 |
| १४६ ... | ४ ...  | भगवन                  | भगवन्                |
| १४६ ... | १० ... | नुत्तनेन              | नुवत्तनेन            |
| १४७ ... | २ ...  | कापुषै                | कापुरुषै             |
| १४८ ... | १२ ... | संश्लिष्ट             | संश्लिष्ट            |
| १४९ ... | १० ... | सुका                  | सुधा                 |
| १५० ... | १० ... | भृगुना                | भृगुणा               |
| १५१ ... | १६ ... | दप                    | दर्प                 |
| १५२ ... | २ ...  | नन्दस्व               | नन्द                 |
| १५२ ... | १४ ... | गृह्णीमः              | गृह्णीमः             |
| १५६ ... | १३ ... | विलाष                 | विलास                |
| १५६ ... | १९ ... | स्पृहणीयं             | स्पृहणीय (एवं परत्र) |



| पृष्ठे | पंक्तौ     | अशुद्धम् ।       | शुद्धम् ।            |
|--------|------------|------------------|----------------------|
| १५७    | ... ११ ... | नधिष्ठे          | नेष्ठे               |
| १५८    | ... ७ ...  | प्रेन्ने         | प्रम्णे (एवं परत्र)  |
| १५८    | ... ९ ...  | संप्रोष्यत्      | संयास्यत्            |
| १५८    | ... १९ ... | वल्ली            | वल्ली                |
| १५८    | ... १९ ... | पल्ल             | पल्ल (एवं परत्र)     |
| १५९    | ... २० ... | सरिस्मयम्        | सविस्मयम्            |
| १६५    | ... ९ ...  | प्राप्तयं        | प्राप्तेयं           |
| १६५    | ... ११ ... | द्रूक्षतेर्दुनि  | द्रूक्षतेर्दुनि      |
| १६५    | ... १२ ... | सकलै             | शकलै                 |
| १६६    | ... ६ ...  | वशा              | वसा                  |
| १६६    | ... १८ ... | प्रणष्टा         | प्रनष्टा (एवं परत्र) |
| १६८    | ... १९ ... | दहिता            | दयिता                |
| १६९    | ... २ ...  | तस्मात्          | तस्मात्              |
| १७१    | ... १२ ... | बध्वा            | बदुध्वा              |
| १७१    | ... १९ ... | लोचनी            | लोचना (एवं परत्र)    |
| १७२    | ... ३ ...  | अभ्यर्थयाम्येनम् | अभ्यर्थये तावदेनम्   |
| १७८    | ... ६ ...  | विस्फुञ्जथु      | विस्फुञ्जेथु         |
| १७८    | ... १२ ... | स्फुटति किमिति   | स्फुटति किमिति       |
| १८९    | ... २२ ... | च्यव             | अव                   |
| १९०    | ... १५ ... | प्रार्थयामि      | प्रार्थये            |
| १९३    | ... १ ...  | पश्चात्          | नानाऽऽ—              |
| १९८    | ... १४ ... | विपर्ययाणा       | विपर्ययाणा           |
| २०२    | ... ५ ...  | दीर्घापाङ्गि     | दीर्घापाङ्ग          |
| २०२    | ... २१ ... | दीर्घापाङ्गी     | दीर्घापाङ्गा         |
| २११    | ... १८ ... | कर्मणो           | कर्मणे               |
| २१३    | ... २१ ... | अयता             | अयता                 |

बवयोः पर्यावर्त्तनन्तु स्वयमेव कार्यम् ।



# कौमुदीसुधाकरं

नाम

प्रकरणम् ।



प्रथमोऽङ्कः ।

प्रत्यक्षाद्यैः प्रमितिकरणैर्लौकिकैरप्रमेयो-  
वेदान्तानां निगमशिरसां वर्त्तते यः शिरःसु ।  
सोऽयं शम्भुः परमपुरुषः केवलं भक्तिलभ्यो-  
दिश्यात् कामं प्रलयरसिको मङ्गलं मङ्गलात्मा ॥

अपि च ।

गङ्गां दृष्ट्वा शिरसि मधुरध्वानतुङ्गोर्मिहस्तां  
जातामर्षां सपदि विमुखीं हन्त शैलेन्द्रपुत्रीम् ।  
किञ्चिद्वक्तुं न खलु कुशलः सम्भ्रमादिन्दुमौलि-  
श्चिन्ताग्लानोभवतु भवतां भूयसे मङ्गलाय ॥

( नान्द्यन्ते )

सूत्रधारः । अलमतिप्रसङ्गेन । ( पुरतोऽवलोक्य ) अये !  
महतीयं परिषत् । तदस्यां युक्तमस्माकं शिक्षा-

नैपुण्यं प्रदर्शयितुम् । श्रुतञ्चास्माभिः प्रियसुहृद्दे-  
विश्वावसोः सकाशात्, यदेषा परिषत् कस्यापि  
प्रयोगस्य दर्शनाय साभिलाषा वर्तते इति । तत्या-  
त्रवर्गमाह्वय यथासमीहितं करोमि । ( नेपथ्याभि-  
मुखमवलोक्य ) कः कोऽत्र भोः !

पारिपार्श्विकः ( प्रविश्य ) भाव, अयमस्मि । को नि-  
योगः ?

सूत्र । मारिष ! नन्वेते महाभागा आर्य्यमिश्रा वि-  
दग्धा भगवन्तोभूमिदेवाश्च भूस्वामिना हरचन्द्रस्य  
सुतयोर्हेमचन्द्रचारुचन्द्रयोर्विवाहसंसदमलङ्कुर्व-  
न्ति । दृश्यतां तावत् ।

इतो गीतमितो वाद्यमितो नृत्यमितः स्तुतिः ।

इतश्च ब्रह्मघोषोऽयं, शं दिशन्ति कुमारयोः ॥

अस्ति खल्वस्यामस्माकं वचनावसरः । कुतः ?

पुरस्तादत्रस्तं परिचितकलानां कृतधिया-

मधीतं तत्प्रीतिं जनयति परामप्रतिहताम् ।

यशोऽध्येतुः साक्षाद्दहति महतामाख्यरचितं

तथा शिक्षादाक्ष्यं रचयति महिन्मैव महताम् ॥

पारि । कतमं पुनः प्रबन्धमभिनेयं भावो मन्यते ?



सूत्र । मारिष, श्रूयताम् । अस्ति किल लौहित्यसलिलपवित्रीकृतोपकरणं चातुर्वर्ण्यनिवासभूतं कैकयेषु \*  
 सेरपुराभिधानं नगरम् । तत्र च, शाण्डिल्यान्वयधुरन्धरस्य धर्मैकतानस्य ब्रह्मविदोब्राह्मणस्य सिद्धान्तवागीशपदलाञ्छनस्य राधाकान्तस्यात्मसम्भवः  
 महामहोपाध्यायपदभाक् तर्कालङ्कारपदलाञ्छनः  
 ब्रह्ममयीपुत्रः कौथुमः चन्द्रकान्तोनाम ब्राह्मणः  
 प्रतिवसति । स च स्वनिर्मितं कौमुदीसुधाकरं नाम  
 प्रकरणमस्मासु समर्पितवान् । तमिमं प्रबन्धमभि-  
 नेतुमिच्छामः ।

पारि । योऽसौ गृह्यसूत्रादीनामौलुक्चदर्शनस्य च भाष्य-  
 कर्त्ता ? तच्चावलिप्रभृतीनाञ्च निर्माता ?

सूत्र । अथकिम् ।

पारि । भाव, प्रमाणप्रवीणस्य काव्यनिर्माणं पङ्कोर्नृत्य-  
 मिव परिषदोहास्ययैव भविष्यति ।

सूत्र । ननु, न केवलं प्रमाणप्रवीणोऽयं, यावत् कवि-  
 रप्यसौ । अनेन किल सतीपरिणयादीनि काव्या-  
 न्यपि निर्मितानि ।

\* ब्रह्मपुत्रात् कामरूपान्मध्यभागे तु कैकयः ।

पारि । भाव, तथापि किमियमस्याभिनवस्य कवेः  
 कृतिरस्याः प्रौढपरिषदः परितोषाय भविष्यति ?  
 सूत्र । नन्वभिनवस्येति वदता भवतैव दत्तो निर्णयः ।

तथाहि ।

पद्मान्तरेष्वलघुनोमधुनोद्विरेफा-  
 यत् प्रार्थितस्य नितरां परितृप्तिभाजः ।  
 सायन्तनानि कुमुदान्यविकाशभाञ्चि  
 गच्छन्ति, तत्र नवतैव निदानमेका ॥

पारि । भाव, तथापि नातिप्रौढः स प्रबन्धः इति  
 यत्सत्यं संशयितं मे हृदयम् ।

सूत्र । ( सवैलक्ष्यम् ) किं मारिषः प्रबन्धमेनं निर्गुणमेव  
 मन्यते ?

पारि । मा मैवम् । निर्गुणं निर्दोषमित्येतत् द्वयमपि  
 जगति निरालम्बनमेव । परन्तु दोषभूयिष्ठं तदिति  
 सम्भावयामः ।

सूत्र । मारिष, अलीकं सम्भावयसि । न खल्वर्वाचीनाः  
 कवयोदोषभूयिष्ठमेव कवयन्ति । अस्तु वा, तथापि  
 परिषदः प्रेक्षणानुग्रहेणैवास्य गुणवत्ता भविष्यति ।  
 पश्य ।

सम्पर्कं महतामवाप्य भजते क्षुद्रः परं गौरवं  
 शुक्तौ स्वातिपयः परत्र न पुनर्मुक्ताफलं जायते ।

ऋद्धानां वनिताङ्गसङ्गतिवशादप्यारकूटं जना-  
मन्यन्ते खलु काञ्चनं, गुणकरीं स्नाध्या सतां सङ्गतिः ॥

पारि । एवमेतत्, किन्तु दोषभूयिष्ठमित्याशङ्कमा-  
नायाः परिषदः प्रेक्षणानुग्रहएव भविष्यति न वेति  
सन्दिह्यते ।

सूत्र । मारिष, अनभिज्ञः खल्वसि सच्चरितानाम् ।

गुणलेशानुरागेण दोषवन्तमपि स्फुटम् ।

सत्यं सन्तोऽनुगृह्णन्ति केतकं भ्रमराइव ॥

तस्य कवेः खल्वियं वाचोयुक्तिः ।

कान्तानां मधुराधरप्रणयिता येषां मतास्तैरपि  
प्रायः स्तोकरसं निपानविरहात् कौपं पयः पीयते ।  
कामं नागरिकाव्रजन्ति सततं ये राजमार्गाश्रया-  
स्ते किं कार्यवशात् अयन्ति न पुनर्गाम्यां सृतिं सङ्कुलाम् ॥

अपि च ।

कामिनीस्तनपद्मेषु भूयोव्यापारितस्तु यः ।

कठोरकरिकुम्भेषु स करः किं न दीयते ॥

अस्तुवा, यथा मारिषः सम्भावयति; तथाप्यभि-  
नयामः । कुतएतत् ?

तिरस्कृतिरपि स्नाध्या गुणज्ञानां न संशयः ।

तिरस्कुर्वन्ति हि स्थाने सुतरान्ते कृतश्रमाः ॥

अपि च ।

पृथग्जनानां स्तुतिरप्यपार्था  
यतो न जानन्ति गुणागुणन्ते ।  
विलोकनीयस्य न जातु शिल्पि-  
स्यान्वस्तवात् शिल्पिगुणप्रकर्षः ॥

अन्यच्च ।

गुणभूयिष्ठवत् दोषभूयिष्ठस्यापि प्रबन्धस्य प्रेक्षणे  
सवासनाः सामाजिका एवाधिकारिणः । निर्व्वा-  
सनाः खल्वत्र स्तम्भकुट्ट्यादिभ्यो न विशिष्यन्ते ।

पारि । किं ततः ?

सूत्र । अधिकारपरिपालनेन आधिकारिका नोद्वि-  
ज्यन्ते । पश्य ।

सहस्रपत्रं मधुरं प्रतिकं कुटजन्तथा ।

विलिहन्त्यविशेषेण कामं मधुलिहोद्वयम् ॥

एतत्ततः ।

अपि च ।

अप्रौढाऽप्यप्रगल्भाऽपि सरसा कविनिर्मितिः ।

वालेव हृदयालूनां भावैः स्पृशति मानसम् ॥

( नेपथ्ये )

साधु भरतपुत्र, साधु । यथाह भवान्,—अप्रौ-  
ढापीत्यादि पठति ।



सूत्र । ( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ) अये ! प्रियसुहृदा साल-  
लङ्कायनेनानुगम्यमानः सुधाकरइतएवागच्छति ।  
तदिदानीमयुक्तमिहावस्थानम् । तदेहि गच्छावः ।  
( इति निष्क्रान्तौ ) ॥

( प्रस्तावना ) ।

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सुधाकरः ) ।

सुधा । वयस्य सालङ्कायन, कथं भवान् मन्यते,—  
सम्यगाह भरतपुत्रः; अप्रौढापीत्यादि पुनः पठति ।  
साल । अथकिम् ।

( सुधाकरोवैचिच्यं नाटयति ) ।

साल । वयस्य, किं चिन्तयसि ?

सुधा । ( सावहित्यम् ) । न किञ्चिद्देवंविधम् ।

साल । ( सप्रणयकोपम् ) । कथं न किञ्चिद्देवंविधम् !

अन्यादृशएव दृश्यसे ।

सम्प्रति हि ।

अलसवलितदृष्टिः सेत्सुकत्वं विषादः

पुरतइव न तावत् सम्भ्रमस्ते क्रियासु ।

वपुरपि रमणीयं क्षामलुप्तोज्वलत्वं

कमपि नवमनस्यं मन्युमभ्युन्नयन्ति ॥

अथवा । तिष्ठतु रहस्यम् ।

सुधा । ( स्वगतम् ) अतिमात्रमुपालब्धोऽस्मि प्रियवय-  
स्येन । ( प्रकाशम् ) वयस्य, मा मैवम् । त्वयि रहस्यं  
न मयि,—इति कोऽयं नयः ।

तथाहि ।

देहद्वयमुपाश्रित्य जीवितस्थितिरावयोः ।

समानुरागिणी भाति लतेवानोकहृदयम् ॥

अपि च ।

सविधे स्वजनस्य चेतसो-

विवृतद्वारतयाऽनिवार्यया ।

न मनागपि कैतवं भवे-

द्भवति स्वात्मनि का विचारणा ॥

साल । कथय तर्हि भूतार्थम् ।

सुधा । कथं न कथयामि । कथाशेषावसर एव ज्ञा-  
स्यसि ।

साल । तेन हि कथाशेषमेव श्रोतुमिच्छामि ।

सुधा । श्रूयताम् । ततः प्रचलितमहार्हास्तरण-क्षुद्र-  
घण्टिका-विन्दुजालक-नक्षत्रमालाऽलङ्कृत-कल्पित-  
कुञ्जरकुलः, कथं कथमप्याधोरणनिशाताङ्कुशसंय-  
मित-विजृम्भितवृंहित-मत्तमातङ्गः, परार्द्धपर्याणस-  
नाथानवरतचर्यमाणखलीन-फेणपुञ्जारञ्जितसृक्-



णीकोन्नमितवालहस्त-निरन्तरस्फीतधुरधुरायमा-  
णरचितसूत्कारघोण-हेषारवमुखराविष्कृतास्कन्दि-  
तधौरितकरेचितवल्गितस्रुत-कुलीन-विनीत-तुर-  
ङ्गमस्तोमः, पुष्परथसंवाह्यमानञ्चद्विमल्लोकः, शनैः  
शनैः सञ्चरत्कर्णोरथस्थकुलावलासकलः, ऊर्द्धीक-  
तविचिचातपत्रनिकरः, स्वहस्तदृढदण्डच्छत्रनिवा-  
र्यमाणप्रचण्डमार्त्तण्डकिरणगच्छन्मध्यवित्तनिवहः,  
अनेकगजवाजिमनुजचरणपातसंजनितचटचटाश-  
ब्दः, समुत्थितरेणुजालधूसरितदिग्विभागः, इतस्त-  
तोविलोक्यमानव्याघ्रचर्मखट्वाङ्गत्रिशूलप्रमुखोपकर-  
ण-भस्मधूसरितकलेवरानेकरुद्राक्षमालावलम्बितर-  
क्तपट्टिकानेपथ्यरुचिर-तपस्विपरिव्राजकः, उच्चाव-  
चवेशविशेषशोभाप्रेक्षणीयजनसमाजः, चतुरकथा-  
रचनाचतुरधूर्त्तजनानुगम्यमानपीवरस्तनजघनम-  
न्यरप्रचलद्वारविलासिनीजनः, श्रूयमाणकलकलः,  
प्रवृत्तोभगवत्याः कात्यायन्या याचामहोत्सवः ।

साल । ततस्ततः ?

सुधा । ततोऽहमसन्निहितत्वाद्भवतोबहुतरं विलम्ब्य  
समुपजातकुतूहलः शनैः शनैरेकएव गतः कात्या-  
यन्यायतनम् ।

साल । कार्यान्तरव्याश्लेषादपराद्दोऽस्मि प्रियवयस्यस्य ।  
हन्त भोः !

एतत्करोमि, कृतमेतदथो करिष्ये  
लोकस्य नाम विफला परिकल्पनैषा ।  
स्वच्छन्दतो न खलु यन्त्रितसर्व्ववृत्तेः  
स्यन्दोऽपि गूढभवितव्यतया नरस्य ॥

सुधा । वयस्य, मा मैवम् ।

पक्षपातो हि मनसः सुहृदां प्रीतये क्षमः ।  
निष्प्रत्यूहा फलप्राप्तिर्नायत्ता खलु बन्धुषु ॥

अपि च । स्वजनप्रणयोऽपि रक्षणीयः । तदलमत्रा-  
शङ्कया ।

साल । (सहर्षम्) एवं न्विदम् । ततस्ततः ?

सुधा । ततोऽहं महता जनसंमर्देनाकुलीक्रियमाणः  
कथं कथमपि प्रविश्य कात्यायन्यायतनं प्रणम्य  
भगवतीं निर्गत्यायतनमध्यात् यात्राप्रवृत्तलोकानां  
विचेष्टितान्यवलोकयितुमितस्ततस्तत्रैव कियन्तं का-  
लमचरम् ।

साल । प्रेक्षणीयं खल्वेतत् । ततस्ततः ?

सुधा । ततोऽहं श्रमापनयनाथैकस्मिन्नशोकतरुमूले  
किञ्चिदान्दोलितदीर्घिकासलिलालोलकलहंसम-

एडलम् आहतजलयन्त्रशीकरं सम्भृतपरागजाल-  
मन्यरम् आवर्जितनवपल्ववम् आपराह्निकं समी-  
रणमासेवमानः स्थितः ।

साल । रमणीयः खल्वत्र निदाघसमये आपराह्निकः  
पवनः ।

इह हि,

नवपरिमलवाही निर्मलः पाटलानां  
रचयति परितोषं साधु गन्धेन्द्रियस्य ।  
अमृतमिव निषिञ्चन् त्वत्तु साक्षाज्जनानाम्  
अपनयति च दैन्यं स्पर्शनः स्पर्शरम्यः ॥

ततस्ततः ?

सुधा । ततस्तत्रैव इतस्ततो यदृच्छया दृशं व्यापार-  
यतः कात्यायनीमन्दिराभ्यर्णस्य कुलावलाजनवि-  
श्रामनिलयस्य उपर्यलिन्दे निपतिता मे दृष्टिः ।

साल । ततस्ततः ?

सुधा । ततश्च सखे, दृष्टं यत् द्रष्टव्यम् ।

साल । (सोत्सुकम्) कथमिव ?

सुधा । एवं हि दृष्टम् ।

पादाग्राङ्गुलिना विलासविमुखी भूयो लिखन्ती भुवं  
सख्यभर्णमवर्णशिल्पिघटितेवात्यन्तमस्यन्दिता ।

वाला काचिदरालपक्षमधुरा लौल्योत्तरे लोचने  
विस्तार्यास्तमितापरव्यवसितं मामापिवन्ती स्थिता ॥

साल । (स्वगतम्) हुं, तदिदं वैचिच्यकारणं प्रियवयस्य-  
स्य ! ( प्रकाशम् ) ततस्ततः ?

सुधा । किमन्यत् । अयइवायस्कान्तमणिना, तडि-  
दिव तैजसधातुना, तस्याः प्रमुग्धकटाक्षविश्लेषेण  
सहसैव समाकृष्टं मे हृदयम् ।

तदानीम्,

निवर्त्तितान्यव्येवसायजातं  
प्रियावलोको हृदयं मदीयम् ।  
क्षणाद्गुरुर्माहृदवातिवेलं  
वलादिव प्रोन्मथयाञ्चकार ॥

साल । ततस्ततः ?

सुधा । ततोऽभूवं खल्वहम् ;

लिखितइव पटान्ते चित्रकर्मप्रवीणै—  
र्घटितइव सुदक्षैर्यन्त्रवत् शिल्पिमुख्यैः ।  
तडितइव विवर्त्तैः पृक्तमात्रः प्रियायाः  
प्रणयमधुरचेष्टैर् लोचनैः स्पन्दशून्यः ॥

साल । (स्वगतम्) कथमतिभूमिं गतश्चित्तजन्मा वय-  
स्यस्य । ( प्रकाशम् ) ततस्ततः ?



सुधा । चामचामशरीरयष्टिरसकृत् दृष्ट्वाऽथ मामुत्सुकं  
 वाला मथनुरागलोलमधुरस्निग्धाः कटाक्षच्छटः ।  
 प्रक्षिप्य क्षणतत्परा मुकुलितैरङ्गैः कदम्बोपमा  
 व्यापारान् हृदयस्पृशोऽतिचतुरान् चक्रे मृगाक्षी पुनः ॥

ततः प्रभृति,

लिखितेव प्रविष्टेव निखातेव दिवानिशम् ।  
 अदृष्ट्वाऽपि दुनोत्येषा हृदयं वेदनेव मे ॥

सखे, सालङ्कायन, पश्य महिमानं मकरकेतनस्य ।  
 यदस्य निदेशवर्त्तिनः परस्परविरुद्धा अपि पदार्थाः  
 सप्रसवाद्भवैकमायतनमनुवर्त्तन्ते ।

तथा हि,

अलक्ष्यपातः किल चित्तजन्मनो-  
 मृदुः प्रहारोऽपि दुनोति मानसम् ।  
 जङ्गीकरोत्युन्मथयत्यथो मिथः  
 प्रमोदयत्युन्मदयत्यनेकशः ॥

साल । (स्वगतम्) अहो प्रभावः कन्दर्पस्य !

विलासो वाग्देव्याः सुललितकलाकेलिनिलयो-  
 निधानं पुण्यानां नयनिधिरथो धैर्यमहिमा ।  
 विनेता लोकानां स्थिरमतिरतीव स्थितिरतो-  
 विपर्यस्तावस्थां यदयमगमत् पुष्पविशिखैः ॥

भवतु, एवं तावत् । (प्रकाशम्) वयस्य, किमपि प्रष्टु-  
कामोऽस्मि ।

सुधा । विश्रब्धं पृच्छताम् ।

साल । इदमेव तावत् प्रथमं पृच्छते ; या किल वि-  
लोकनेनैव प्रियवयस्यस्य हृदयमधिष्ठिता, न सा  
साधारणाङ्गनाजनसदृशी भवितुमर्हति । न खलु  
यया कयाचित् सौदामन्या विदीर्यते शिलोच्चयः ।  
तदस्त्येव कोऽप्यतिशयस्तस्याः । तत्कथय कीदृश्य-  
साविति ।

सुधा । सखे, वञ्चितोऽसि वेधसा तदानीमसन्नि-  
हितः । न दृष्टवानसि द्रष्टव्यम् ।

कुसुमादपि कमनीयं सन्तर्पणममृतराशितोऽप्यस्याः ।

नवनवसुषमाभूमिर्वपुरेणदृशां निराकरणम् ॥

सर्व्वथा वचसामतीत्य विषयं वर्त्तते लोकोत्तरः  
कोऽपि रमणीयताप्रकारस्तस्याः । सा खल्वपरिचि-  
तदोषः षष्ठइन्द्रियार्थो मर्त्यलोकस्य, कुसुमास्त्रादपि  
सुकुमारतरं अपूर्व्वं जैत्रमायुधं कुसुमधन्वनः, परा  
निर्माणाचातुरी प्रजापतेः । किं बहुना,

मुखं राकाचन्द्रः स खलु न कलङ्काङ्किततदु-  
दृशौ पद्मप्राये समदिननिशीथं विकसिते ।



मृणालाभौ बाहू प्रकृतिसुभगस्निग्धमधुरौ

वपुः कान्तं तस्याः कुसुमसुकुमारं मृगदृशः ॥

नूनं तस्याएव निर्माणपाटवमभ्यस्यता वेधसा चन्द्र-  
कलादयो मानसस्पृशः सुकुमारतराः पदार्थाः  
पूर्वमुत्पादिताः । मानसी वा सृष्टिः पुनरपि प्रवृत्ता  
परमेष्ठिनः । कथं नु खलु करतलविघट्टनापरुषस्य  
तादृशं सौकुमार्यं वपुषः । अथवा । नैषा विषय-  
पराङ्मुखस्य ब्रह्मजडस्य ब्रह्मणः सृष्टिः । किन्तु,

त्रिभुवनजयलक्ष्मीमिच्छताऽल्पैरुपायैः

सुललितवपुरेषा निर्मिता मन्मथेन ।

मधुरपि सुहृदोऽस्मिन् कर्मणि प्रार्थनीये

मुदितहृदय आसीदद्वितीयः सहायः ॥

साल । वयस्य, नैतादृशा आकारविशेषाः स्वल्पगुणा-  
भविष्यन्ति । सर्वथा गुणनिधानं तत्रभवती ।  
अथ, वयस्य-तत्रभवत्योस्तथाविधे अवस्थान्तरे  
किमपरं वृत्तम् ?

सुधा । तस्मिन्नेव समये परिणतप्रायोदिवसः । अथ  
कुसुमामोदमन्थरे मन्दमन्दं वहति सन्ध्यासमीरणे,  
धूसरितदिग्विभागे, निर्वाणभूयिष्ठे पश्चिमाकाश-  
प्रान्तलम्बिनि प्रचण्डज्वलदङ्गारपिण्डइव परि-

लोहिते मार्त्तण्डमण्डले, वलाहकच्छेदमनोहरे  
 आरक्तवारुणीविहायसि, ईषन्मेचकमेघलेशमलिन-  
 प्राये पूर्वाशामुखे, प्रारब्धनिवासगमनतया विरल-  
 जनसंमर्दे, तस्याः प्रियवयस्या शनैः शनैरुपरित-  
 नालिन्दात्तामवतार्य्य एकस्मिन् विरलजनसम्प्राते  
 प्रदेशे स्थित्वा संज्ञया मामाकारितवती ।

साल । (सोत्सुकम्) ततस्ततः ?

सुधा । ततोमिथोविदितास्मत्परिचया प्रापय्य तस्याः  
 सकाशं सबहुमानं मामवोचत् । महाभाग, प्रण-  
 ष्टोऽस्याः प्रियसख्या रक्षिवर्गः, समागतप्राया च  
 सन्ध्या, तदहं तमन्विष्यामि, न च शक्नोम्येकाकिनी-  
 मेनामुपेक्ष्य गन्तुम्, महाभागस्तावन्मुहूर्त्तमस्याः  
 पार्श्ववर्ती भूत्वा करोत्वनुग्रहमवलाजनेषु । पर-  
 दुःखकातराः खलु दयालवो भवन्ति,—इति ब्रुव-  
 त्येव निष्क्रान्ता ।

साल । (स्मितं कृत्वा) सुष्ठु खलु संविहितं तथा । मृगयु-  
 हस्तगता मृगी न खलु दुःसाध्या भविष्यति । तत-  
 स्ततः ?

सुधा । ततोऽहं महानयमनुग्रह इति पुलकितात्मा तस्या  
 नातिदूरे स्थित्वा “भवति, विश्रब्धं स्थीयताम्,

अयन्ते रक्षिजनः पुरतएव वर्त्तते” — इत्यभिधाय स्थितः ।

साल । (विहस्य) कथं नातिदूरे स्थित्वा, न पुनस्तामङ्कं नीत्वा ?

सुधा । (सस्मितम्) अलं परिहासेन । कुलावला हि सा महानुभावा च न प्रसह्य ग्रहीतुं योग्या, विशेष-तस्त्वस्मद्विधैः ।

साल । आं, ततस्ततः ?

सुधा । ततस्तस्या रमणीयतां स्पष्टमवलोकयतः परमानन्दनिर्भरेण निर्वृतं मे हृदयं, सन्तर्पितानि चाङ्गानि । पुरा खलु तस्याः,

अलक्ष्यसन्धि सौन्दर्यं यथावन्न विभावितम् ।

सन्निधौ पुनरन्येव लक्षिता सा वराङ्गना ॥

साल । अथ रहसि सन्निहिते वयस्ये कतमो व्यवसायस्तत्रभवत्या वृत्तः ?

सुधा । न कश्चिद्देवंविधः ।

साल । शृणुमस्तावत् ।

सुधा । शृणु,

मा मामप्यवलोकयद्दङ्गतरं नापश्यदप्यन्यतः

खच्छन्दस्फुरिताधरा भृशमभून्नैवाब्रवीत् किञ्चन ।

ऐच्छद्गन्तुमितस्ततो न च ततः स्थानात् पदञ्चागमत्

श्चासान् केवलमुष्णदीर्घवपुषोऽत्याचीन्मृगाची मुहुः ॥

साल । कथं न कश्चिद्देवविधः । महतः खल्वयमनु-  
रागबन्धस्य प्रकारः ।

सुधा । मा मैवम् । सुग्धानां कुलावलानामागन्तुक-  
सन्निधौ लज्जाप्रकारः खल्वयम् ।

साल । (विहस्य) न खलु दर्शनमात्रेणैव तत्रभवती भव-  
तोऽङ्गं नारूढवती,—इत्यतो लज्जाप्रकारोऽयम् ।

सुधा । (सस्मितम्) अपरिचितपूर्व्यं परिहासरसिकता  
प्रियवयस्यस्य ।

साल । मम, न पुनर्भवतः ? भवतु । ततस्ततः ?

सुधा । ततस्तस्मिन्नवसरे समागतप्रायो रश्मिवर्गः ।

साल । कथं गिरिकामनुसन्धतः कृतक्षणस्य मार्जारस्य  
सारमेयका अन्तरायाः संवृत्ताः । ततस्ततः ?

सुधा । ततस्तद्वयस्यया ससंज्ञमपवाहितोऽस्मि तस्मात्  
प्रदेशात् । तदानीञ्च,

यामो वाले, वयमिति मया गन्तुकामेन शोका

स्नायत्पङ्केरुहदलनिभे लोचने लुप्तलौल्ये ।

सुग्धा मां प्रत्यहह न चिरं कुर्वती तच्चकार

भ्रातर्वाचां न खलु विषयः केवलं चेतसो यत् ॥



तद्वयस्य, किं कथयामि । अधुनाऽपि तस्याः,

कान्तं रसोत्तरवशादीषद्वक्रं विवर्त्तितग्रीवम् ।

मुग्धविलोचनमास्यं सोत्सुकमथितं मनः कुरुते ॥

अपिच,

लावण्यं तद्वलितवलितप्रेक्षितं पक्ष्मलाक्ष्याः

साक्षात् पङ्केरुहपरिभवप्राप्तदीप्तो मुखेन्दुः ।

काऽपि च्छाया प्रकृतिमधुरा सस्यूहप्रेक्षणीया

स्मारं स्मारं कुवलयदृशस्तृप्यते नान्तरात्मा ॥

(इति विषादं नाटयति) ।

साल । वयस्य, समाश्वसिहि ।

अमृतमिव दृशो र्यां मन्यसे सारमूर्ब्ध्या-

स्त्वमपि विधिनिदेशाद्भ्रतसारोऽसि तस्याः ।

तदिह मदनएव स्नाघनीयाभियोगो-

न खलु चिरमवश्यं मङ्गलं संविदध्यात् ॥

ततस्ततः ?

सुधा । ततः परापतिते तस्याः परिजने “भवति, अप-  
क्रामति समयः साधयामस्तावत्, कथान्तरे स्मर्त्त-  
व्योऽयं जनः”—इति ब्रुवन्नेवाहं निष्क्रान्तः ।

साल । ततस्ततः ?

सुधा । ततः साऽपि गच्छन्ती परावर्त्य परावर्त्य वदनं

सस्पृहमवलोक्य कर्णीरथमारूढा । सखे, कातरं  
खल्वधुनाऽपि,

तदलसवलितं प्रेम्णा मुग्धं स्निग्धं विलोचनद्वितयम् ।

प्रचलनसमये तस्या मधुरकटाक्षं मनः स्मरति ॥

(इति निःश्वसिति) ।

साल । अथ तत्रभवती कस्य पुण्यवतः कुलभूषणं  
किन्नामधेया च इति ज्ञातं वयस्येन ?

सुधा । आं, ज्ञातं सखे, ज्ञातम् ।

साल । कथमिव ?

सुधा । तस्यां कर्णीरथमारूढायां गच्छति च परिकरे  
सैव वयस्या दन्तपत्रिकाव्यपदेशेन पुनरागत्यास्मत्-  
सकाशं रहसि सर्वमकथयत् ।

साल । अथ कस्यापत्यरत्नं सा ?

सुधा । सा खल्वस्यैव नगरस्यालङ्कारभूतस्य सुगृहीत-  
नाम्नः पुण्यकीर्त्तरेकमात्रमपत्यरत्नम् ।

साल । (सप्रत्यभिज्ञम्) । या किल कौमुदीत्याख्यायते ?

सुधा । अथकिम् । याऽपि तस्याः प्रियवयस्या, साऽपि  
तस्याएव स्वजनगन्धिनी सुन्दरी नाम ।

साल । वयस्य, दिष्ट्या वर्द्धसे गुणोत्तरस्यामनुरागबन्ध-  
नेन । अथवा । कथमस्थाने मनसः प्रवणता



सम्भाव्यते भवद्विधस्य । वारुण्यामेव दिशि विश्राम-  
विनोदो हेममालिनः, पूर्वसन्ध्यायामेव निर्बन्धो-  
भानुमत्प्रकाशस्य । शतहृदाऽपि विहाय वलाहकं  
क्व रमताम्, तरङ्गिणी वा सिन्धुमृते क्व विश्राम्यतु ।  
सर्वथा समाश्र्वसिहि । महानुभावा खल्वत्रभवती ।  
न खलु तथाविधाया मनस्विन्या अन्यद्वाचि अन्य-  
च्चेतसि सम्भाव्यते । नूनमवितथएव भावबन्धस्तत्र-  
भवत्याः । यतः,

गुणावलीनां खलु सैकभूमि-  
नैर्गर्गिकन्तत्र दृढव्रतत्वम् ।

नैतद्विपर्य्ययति, क्वचिमो यो

गुणः समश्नाति विपर्य्ययं सः ॥

सुधा । (निःश्वस्य) वयस्य, एवमेतत् । तथापि वलवता  
संशयेन विहस्तितोऽस्मि मन्दभाग्यः । यत् सत्यं  
नाधिगच्छति स्थिरतां मे हृदयम् । कुतः ?

सारल्यैकनिधानमेणनयना कारुण्यवारांनिधिः

सत्सङ्कल्पपरायणा प्रतिनिधिः सा धैर्य्यगाम्भीर्य्ययोः ।

अस्मद्भाग्यविपर्य्ययोऽपि वलवानाशङ्कनीयः सखे,

तादृग्रत्नसमागमः कथमहो पुण्यैर्विना लभ्यते ॥

साल । वयस्य, मा मैवम् ।

जगति रुचिरतायाः सैव सत्यं विलास-  
 स्वमपि गुणगणानां पात्रमेकः पृथिव्याम् ।  
 अकलुषमणिहेम्नोर्द्योगशोभां दिदृक्षुः  
 क्षपयति खलु विघ्नं पूर्वमस्मिन् विधिर्वः ॥

(नेपथ्ये)

शरणागतोऽहम् । अज्जा, परित्ताअध परित्ता-  
 अध<sup>(१)</sup> ।

सुधा । अभयं शरणागतस्य ।

(पुनर्नेपथ्ये सएव शब्दः)

सुधा । (श्रुतिमभिनीय) कथं योषित्स्वरसंयोगः ! (ससम्भ्रमम्)  
 वयस्य वयस्य, अनेन खड्गेन झटिति प्रतिपद्यस्व  
 शरणार्थिनीम् । ज्ञायतां कतमदत्याहितं, प्रति-  
 क्रियताञ्च ।

साल । भवति, न भेतव्यं न भेतव्यं, दिष्ट्या महदनुवृत्ति-  
 स्त्वां रक्षति (इति खड्गमादाय निष्क्रान्तः) ।

सुधा । (स्वगतम्)

अवलाजनेषु लोकाः प्रतिकूलं कथमिवाचरन्ति मिथः ।

अथवा निष्करुणानां किं चित्रं परुषकृत्येषु ॥

(नेपथ्ये कलकलः)

(१) शरणागताऽस्मि । आर्याः परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तो वज्रुलकः) भट्टा, अच्छेरं अच्छेरं! को वि  
दस्सू तत्थभेदीं अक्कमिअ जाव ण किं पि अच्चा-  
हिदं करइ, दाव अज्जसालंकाअणेण णिग्गिहीदेा  
कहिं पि पपलाविअ गदेा<sup>(१)</sup> ।

सुधा । प्रियं नः । तेन हि शीघ्रं प्रवेशय तौ, इदन्ते  
प्रियनिवेदनपारितोषिकम् । (इति कटकमर्पयति) ।

वज्रु । जं भट्टा आण्णवेदि<sup>(२)</sup> । (इति कटकमादाय निष्क्रान्तः)

सुधा । कलावति, इतस्तावत् ।

कला । (प्रविश्य) भट्टा, इअं मिह कोणिआओ<sup>(३)</sup> ?

सुधा । स्त्रीजनोपवेशनयोग्यमासनमुपहर ।

कला । उपहरामि । (इनि निष्क्रम्य आसनमादाय प्रविश्य) इद  
मासणं<sup>(४)</sup> । (इत्यासनं संस्थाप्य निष्क्रान्ता) ।

(ततः प्रविशति सालङ्कायनमनुगता सुन्दरी) ।

साल । आर्य्ये, अयं सुगृहीतनामा गुणराशिरिव

(१) भर्त्तः, आश्चर्य्यं आश्चर्य्यं ! कोऽपि दस्युल्लभवतीमाक्रम्य यावन्न कि-  
मप्यत्याहितं करोति, तावदार्य्यसालङ्कायनेन निगृहीतः कुत्रापि  
प्रपलाय्य गतः ।

(२) यत् भर्त्ता आच्चापयति ।

(३) भर्त्तः, इयमस्मि, को नियोगः ?

(४) उपहरामि । इदमासनम् ।

मूर्त्तिमान् प्रियवयस्यः सुधाकरः पुरतएव तिष्ठति,  
उपसर्पतु भवती । (इति परिक्रामतः) ।

सुन्द । (स्वगतम्) अम्म! अज्जसुहाअरस्स एदं घरं, अअं  
पि महाभाओ तस्स ज्जेव पिअवअस्सो सालं  
काअणो! (विमृश्य) भोदु, पिअसहीए णिसिद्धत्थदूई  
कच्चं काहं । (सस्मितम्) मह अ<sup>(१)</sup> । (इत्युपसर्पतः) ।

सुन्द । अज्ज, वंदामि<sup>(२)</sup> । (इति प्रणमति) ।

सुधा । (स्वगतम्) । कथं सुन्दरी! (प्रकाशं सादरम्) । एहि  
इदमासनमास्यताम् । वयस्य, त्वमप्युपविश ।

(यथास्थानं उभावुपविशतः) ।

सुधा । (अपवार्यं जनान्तिकम्) वयस्य, सेयम् ।

साल । नखलु तत्रभवती कौमुदीयम्?

सुधा । नहि नहि सुन्दरीयम् ।

साल । (सहर्षमात्मगतम्) दिष्ट्या अनपराद्धोऽस्मि प्रिय-  
वयस्यस्य । (प्रकाशम्) यद्येवं अत्रभवत्याः सकाशात्  
तत्रभवत्याः प्रवृत्तिमुपलप्स्यामहे ।

(१) अहो ! आर्यसुधाकरस्यैतद्गृहं अयमपि महाभागस्तस्यैव प्रिय-  
वयस्यः सालङ्गायनः । भवतु प्रियसख्या निरुष्टार्थदूतीकृत्यं करिष्यामि ।  
मम च ।

(२) आर्य, वन्दे ।



(सुन्दरी सालङ्कायनं तिर्यगीक्षते) ।

सुधा । अपि नाम अपनीतः श्रमो भवत्याः ?

सुन्द । अज्जप्पसात्रादो<sup>(१)</sup> ।

सुधा । आर्य्ये, अकुटिलानां सख्यं साप्तपदीनमुच्यते  
कविभिः । तद्भवत्याएवानुग्रहो मां मुखरयति ।

सुन्द । (सस्मितम्) अभूमीं क्वु एरिसाणं महोवआ-  
राणं अअं जणो, अणप्पीआ क्वु एव्वं उवअरी-  
अइ, ता आणवेदु अज्जो<sup>(२)</sup> ।

साल । (स्वगतम्) अहो लोकाचारचतुरता ।

सुधा । यदि न रहस्यं तदामूलतः श्रोतुमिच्छामि,  
किमिदमत्याहितं कश्चास्य प्रभवइति ।

सुन्द । सुणादु अज्जो । अत्थि णंदणुज्जाणस्स णादिदूरे  
चण्डिआअअणं<sup>(३)</sup> ।

सुधा । यत् खलु मूर्त्तमिव कीर्तिकदम्बं तत्रभवतः  
पुण्यकीर्त्तेः ।

सुन्द । तत्थ सङ्करा णाम परिव्वाइआ णिवसइ<sup>(४)</sup> ।

(१) आर्य्यप्रसादात् ।

(२) अभूमीः खलु ईदृशानां महोपचाराणामयं जनः, अनात्मीयाः खल्वेव-  
मुपचर्यन्ते । तदाज्ञापयत्वार्य्यः ।

(३) शृणोतु आर्य्यः । अस्ति नन्दनोद्यानस्य नातिदूरे चण्डिकायतनम् ।

(४) तत्र शङ्करा नाम परिव्राजिका निवसति ।

सुधा । आं ज्ञायते, महाप्रभावा सा परिव्राजिका ।  
 सुन्द । अधइं । तीसे भञ्जवदीए सञ्जासं गदोम्हि<sup>(१)</sup> ।  
 सुधा । किं पुनर्निमित्तं तत्रभवत्याः प्रदोषसमये भग-  
 वतीसकाशगमनस्य ?

सुन्द । समीहितफलस्त सन्तुअञ्जसाहरणं त्ति<sup>(२)</sup> ।

सुधा । कस्येदं शान्त्युदकमाह्रियते ?

सुन्द । कुलाअलाउलरअणहूदाए सअलगुणेक्कणिल-  
 अरुवाए पिअसहीए कोमइए इमं सन्तुअञ्जं आ-  
 हीरइ<sup>(३)</sup> ।

सुधा । (सोद्वेगम्) किं तस्याः ?

सुन्द । सा खलु कञ्चाअणीजत्तामहूस्सवादे पडिणि  
 उत्ता तदेज्जेव आरहिजण अदिब्ब असत्यशरीरा  
 जादा । तदे इमं सन्तुअञ्जं आहीरइ । सणिहइ  
 खलु से पुत्तिआए विअ भञ्जवदी परिव्वाइआ<sup>(४)</sup> ।

(१) अथ किं । तस्या भगवत्याः सकाशं गताऽस्मि ।

(२) समीहितफलस्य शान्त्युदकस्याहरणमिति ।

(३) कुलावलाकुलरत्नभूतायाः सकलगुणैकनिलयरूपायाः प्रियसख्याः  
 कौमुद्या इदं शान्त्युदकमाह्रियते ।

(४) सा खलु कात्यायनीयात्रामहोत्सवात् प्रतिनिरुत्ता ततएवारभ्य  
 अतीवास्वस्थशरीरा जाता । तव इदं शान्त्युदकं आह्रियते । खिह्य-  
 ति खलु तस्याः पुत्रिकायाइव भगवती परिव्राजिका ॥



सुधा । (सविषादभात्मगतम्) कथमतीवास्वस्थशरीरेत्याह !

अहह !

आशातन्तुस्तुटतु, हृदयं दीर्यतां, दुर्जयोऽसौ  
कन्दर्पोऽपि क्षिपतु युगपत् पञ्च वाणानमोघान् ।  
विच्छेदाग्निर्दहतु सुलभप्रार्थि मिथ्या मनो मे  
प्राणाः शीघ्रं विफलजनुषो वज्रसारा ब्रजन्तु ॥  
(इत्युद्वेगं नाटयति) ।

साल । आर्ये, प्रियवयस्यसम्पर्कात् द्विजातिसुलभ-  
चापल्याच्च किमपि प्रष्टुकामोऽस्मि ।

सुन्द । (सहर्षमात्मगतम्) अम्नो मधुरदा वाआणं, पुच्छ पुच्छ  
णिसिंचसु वज्रणामिरण कक्षा । (प्रकाशं) आणवेदु  
अज्जो<sup>(१)</sup> ।

साल । अथ तत्रभवत्याः कतमः प्रकारोऽस्वस्थशरी-  
रायाः ?

सुन्द । (स्वगतम्) अम्नो चातुलित्रं<sup>(२)</sup> । (इति द्यतकवैमनस्यं  
नाटयति) ।

सुधा । (निःश्वस्य स्वगतम्) ।

गृणु हृदय, सुघोरं विप्रियाणां सहस्रं  
प्रियसुहृदिह तावत् सोत्सुकत्वं प्रपन्नः ।

(१) अहो मधुरता वाचां, एच्छ एच्छ निषिञ्च वचनामृतेन कर्णा ।  
आज्ञापयत्वार्थः ।

(२) अहो चातुर्थ्यम् ।

अथवा,

कथमपि ननु दैवे वामतामभ्युपेतै

विरचयति निकामं मित्रमप्यप्रियाणि ॥

सुन्द । (निःश्वस्य) महाभात्र, सुणीअदु । अउव्वो पिअस-  
हीए असत्थदाप्पआरो । सा ख्खु दक्खिणाणि-  
लादो उव्विज्जइ, फुज्जहुदो विअ कोइलकण्ठर-  
आदो वीहइ, अणलपेण्डं विअ चन्दमण्डलं  
मुणइ, मलअअरसलेत्तसरोरावि परितप्पइ, णि-  
आहसेव्वलिणी विअ अणुदिणं जिज्झइ से सरी-  
रलङ्गी, पाहादिअचन्दमण्डलवण्डिमाणं वहइ मु-  
हलच्छी, दअइ विरहकादराए चक्कआअवह्णए,  
ण सक्कइ घरकवोअमिहुणं अस्सोअभावरसहं<sup>(१)</sup> ।  
(इत्यर्द्धोक्ते लज्जां नाटयति) ।

साल । (जनान्तिकम्) ।

(१) महाभाग, श्रूयताम् । अपूर्वः प्रियसख्या अस्वस्थताप्रकारः । सा खलु दक्षिणानिलादुद्विजते, स्फूर्ज्जथोरिव कोकिलकण्ठरवादिभेति, अनल्पिण्डमिव चन्द्रमण्डलं मन्यते, मलयजरसलिप्तशरीराऽपि परितप्यते, निदाघशैवलिनीवानुदिनं क्षीयते तस्याः शरीरयष्टिः, प्राभातिकचन्द्रमण्डलपाण्डिमानं वहति मुखलक्ष्मीः, दयते विरह-कातरायै चक्रवाकवध्वै, न शक्नोति गृहकपोतमिथुनं अन्योन्यभा-वरसार्द्रं ॥

वयस्य, अलमन्यया सम्भाव्य । ननु भवानेवात्र  
निदानम् ।

सुधा । (सवितर्कमात्मगतम्) अपि नाम ममैव भागधेया-  
नां स्फुरितमेतत् स्यात् ।

(विचिन्त्य सहर्षम् अथवा, कृतं सन्देहेन ।

सैवेयमुत्पलदृशो नितरामवस्था

या कामिनां भवति रूढिगतेऽभिलाषे ।

चेतो यदेव मनुषे कुलिशं तदेत-

दाषायनामृतमतः स्थिरतामुपैहि ॥

साल । कात्यायनीयात्रामहोत्सवे किमुद्देगकारणं वृत्तं  
तत्रभवत्याः, येन ततएवास्वस्थशरीरा जाता ?

सुन्द । (सस्मितमात्मगतम्) चदुर, अहिंसो क्वु सि ।

(प्रकाशम्) महाभाअ, ण क्वु अस्स उव्वेअकालणं

अस्सो वेअ, ता इमस्सिं णत्थि से वाआविहवे ।

ता क्वमदु मं अज्जो<sup>(१)</sup> ।

साल । (जनान्तिकं) वयस्य, कृतं संशयेन । दिष्ट्या वर्द्धा-  
महे ।

(१) चतुर, अभिज्ञः खल्वसि । महाभाग, न खल्वन्यस्योद्देगकारणमन्यो-  
वेद । तदस्मिन् नास्ति मे वाग्विभवः । क्षमतां मामार्यः ।

तस्यास्तथाविधाऽवस्था शोचनीया न संशयः ।

अमोघं दैवनिर्दिष्टं भवानपि महौषधम् ॥

सुधा । (—सुन्दरों प्रति) अथ किमत्याहितं वृत्तमार्यायाः ?

सुन्द । सुणादु अज्जो । अत्थि मसाणवाडस्स सआसे  
चामोण्डामन्दिरकिदावासे कावालिओ खण्ड-  
मोण्डोणाम<sup>(१)</sup> ।

सुधा । स खलु दुरात्मा खण्डमुण्डः !

सुन्द । सो किल योअसिद्धीए सव्वलक्खणोवेदां काम्पि  
कुमारिआं मग्गेइ<sup>(२)</sup> ।

सुधा । ततस्ततः ?

सुन्द । तदो एकआ कामदेव्वाअदणपडिणित्तमाणां  
पिअसहीमइमग्गे पेक्खिअ सव्वलक्खणोवेदा  
इअं मह कज्जसिद्धीए हुविस्सदि त्ति तां ओहत्तु-  
मुज्जओ<sup>(३)</sup> ।

सुधा । अहो नैर्घण्यम् ! ततस्ततः ?

(१) षट्शोत्वार्थः । अस्ति प्रसंगानवाटस्य सकाशे चामुण्डामन्दिरकृता-  
वासः कापालिकः खण्डमुण्डो नाम ।

(२) स किल योगसिद्धये सर्व्वलक्षणोपेतां कामपि कुमारिकां मृगयते ।

(३) तत एकदा कामदेवायतनप्रतिनिवृत्तमानां प्रियसखीं अर्द्धमार्गे  
प्रेक्ष्य सर्व्वलक्षणोपेतेयं मम कार्य्यसिद्धये भविष्यति इति तामपह-  
त्तुमुद्यतः ।



सुन्द । तदो अहं सपरिअणा पावस्सन्तराओ सम्बुत्ता<sup>(१)</sup> ।

सुधा । युज्यते, ततस्ततः ?

सुन्द । तदोपहुदि परिकुविदो मज्झ कावालिओ<sup>(२)</sup> ।

सुधा । ततस्ततः ?

सुन्द । तदो अज्ज असहाआं मम्पेक्खिअ, पावे, णिवारिअकोमइहरणे, णणु इअं ण होसि, अअ-महं खण्डमोण्डो तुमं ज्जेव भअवदीए वलिं उवह-रामि,—त्ति आमोडिअ सिरोहरां मङ्गेह्णहीअ<sup>(३)</sup> ।

(इति वाष्पैः कण्ठरोधं नाटयति) ।

साल । (स्वगतम्) आः पाप, प्रपलाय्य गतोसि, किमत्र क्रियताम् । नूनमनुभविष्यसि फलमविनयस्य ।

सुधा । (सकरुणम्) विरमतु भवती । अलमात्मानं खेद-यित्वा ।

सुन्द । तदो इमिणा महाभाएण परितादोह्मि<sup>(४)</sup> ।

(इति सस्पृहं सालङ्कायनमीक्षते) ।

(१) ततोऽहं सपरिजना पापस्थान्तरायः संवृत्ता ।

(२) ततः प्रभृति परिकुपितो मह्यं कापालिकः ।

(३) ततोऽद्य असहायां मां प्रेक्ष्य, पापे, निवारितकौमुदीहरणे, नन्विद्यं न भवसि, अयमहं खण्डमुण्डस्वामेव भगवत्यै चामुण्डायै वलिमुप-हरामि,—इत्यामुद्य शिरोधरां मामग्रहीत् ।

(४) ततोऽनेन महाभागेन परित्राताऽस्मि ।



साल । (सोत्सुकमात्मगतम्) कथम् !

सेयं वामविलोचनाकुलमणिर्लावण्यलीलास्यली  
 वैदग्ध्यस्य नवेव मूर्तिरपरा कीर्त्तिर्मनोजन्मनः ।  
 प्रत्यङ्गं लिखितेव नाम करुणा निष्कारणा वेधसा  
 मामेषा चतुरैः कटाक्षरचनैर्मथ्याति कोऽयं विधिः ॥

वयस्य, यत् सत्यमद्यप्रभृति वयस्योऽस्मि संवृत्तो भवतः,  
 इयमपि तस्याः । कुतः ?

त्वमस्याः प्रेयस्या मुखकमललुब्धोऽस्यतितराम्  
 अहञ्चास्याः साक्षात् सुचतुरकटाक्षस्य वशगः ।  
 वयस्येयं तस्या अहमपि वयस्योऽस्मि भवतः  
 समावश्ययोगात् कथमपि न वाच्यो विधिरिह ॥

(इति वैमनस्यं नाटयति) ।

सुन्द । सो त्कण्ठम्) अदि क्वु वाहइ पिअसहोए उव-  
 दावो । ता इच्छामि अज्जेण अव्भणुस्सादा  
 गमिउं<sup>(१)</sup> ।

सुधा । युज्यते । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वञ्जुलक,  
 वञ्जु । (प्रविश्य) अत्रं ण्हि<sup>(२)</sup> ।

(१) अति खलु वाधते प्रियसख्या उपतापः । तदिच्छामि आर्येणाभ्य-  
 नुज्ञाता गन्तुम् ।

(२) अयमस्मि ।

सुधा । आलोकमादाय अग्रगामी भूत्वा वसतिं प्राप-  
यैनाम् । वयस्य, त्वमपि तत्रभवत्याः पश्चादूर्तो  
भव ।

(वज्रलको निष्क्रान्तः) ।

सुन्द । जं मण मन्दभाङ्गीण उव्वेइदो अज्जो, ता  
कवमीअदु अज्जेण<sup>(१)</sup> ।

सुधा । मा मैवं, गृहमेतद्भवत्याः ।

सुन्द । अणुगहीदोह्मि<sup>(२)</sup> ।

(आलोकमादाय प्रविशति वज्रलकः) ।

सुन्द । अज्ज, साहेमि । णमो दे<sup>(३)</sup> । इत्युत्तिष्ठति ।

सुधा । गम्यतां पुनर्दर्शनाय, शिवस्ते पन्था अस्तु ।

(सुधाकरवर्जं सर्वे परिक्रम्य निष्क्रान्ताः) ।

सुधा । (द्विपदिकया वह्निरवलोक्य) अतिप्रौढिमुपागतः खल्व-  
न्धकारः । सम्प्रति हि,

लिप्तद्वाञ्जनपुञ्जैर्निर्मितद्वय सकलमेचकद्रव्यैः ।

तमसा पूरितमध्ये निरन्तरो लक्ष्यते लोकः ॥

(पुनर्द्विपदिकया ऊर्ध्वमवलोक्य) ।

अहो प्रौढता रजन्याः रमणीयता च समयस्य ।

(१) यन्मया मन्दभागिन्या उद्देजित आर्य्यः, तत् क्षम्यतामार्य्येण ।

(२) अनुगृहीताऽस्मि ।

(३) आर्य्य, साधयामि । नमस्ते ।

क्षुब्धाम्बोधिप्रकाशोलसदमलरुचिः काममाकाशदेशो-  
 मुक्ताहारप्रभासो व्यपगतकलुषास्तरकाः फेनकल्पाः ।  
 नैदाघोमातरिश्वा खनति च मधुरं श्रोत्रगात्रानुकूलो-  
 विश्रामं संलभन्ते श्रमहृश्वपुषः प्राणिनः प्राप्तनिद्राः ॥  
 तद्दहमपि विश्राममेव प्रतिपत्स्ये ॥ (इति निष्क्रान्तः) ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति कौमुदीसुधाकरे प्रथमोऽङ्कः ॥

## द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति चूतलतिका ।)

चूत । (परिक्रम्यावलोक्य च ।) ओसाण्पाओ दिअहे । आ-  
अवसुक्खो रुक्खअणिअहे हीरिअसारो विअ  
लोओ ण सुहेइ दिट्ठीं । दीणदामुवगदो हीरिअवत्तु  
सौअन्तो विअ दीसइ । अइणअगव्विदो दुट्ठासओ  
सहसा रिद्धिं पत्तो णीओविअ णिअन्तदुःसज्जेहिं  
पदावेहिं आउलेइअ लोअं परिक्खीणतेओ णि-  
वादुस्सुहे पेक्खीअदि सुज्जो । विडविलंहिआणं  
इत्थिआणं विअ परिमिलाणाइं लक्खीअन्ति दिसाणं  
मुहाइं । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथं गोमालिआ किं  
पि मन्तेमाणा इदोज्जेव्व आअच्छदि । जाव पडि-  
वालेमि णं<sup>(१)</sup> । (इति स्थिता) ॥

(१) अवसानप्रायोदिवसः । आतपशुक्को वृक्षकनिवहो हृतसारइव  
लोको न सुखयति वृष्टिं । दीनतामुपगतो हृतवस्तु शोचन्निव दृश्य-  
ते । अविनयगर्वितोदुष्टाग्रयः सहसा ऋद्धिं प्राप्तो नीचइव नितान्त-  
दुःसह्यैः प्रतापैराकुलथ लोकं परिच्छीणतेजा निपातोन्मुखः प्रेक्ष्यते  
सूर्यः । विटविलङ्घितानां स्त्रीणामिव परिस्नानानि लक्ष्यन्ते दिशां  
मुखानि । कथं नवमालिका किमपि मन्त्रयमाणा इतएवागच्छति ।  
यावत् प्रतिपालयाम्येनाम् ।



(ततः प्रविशति नवमालिका ।)

चूत । हला णोमालिए, कहिं उण एव्वं सतुवरं पत्थि  
दासि जेण समीववट्टिणीं पि मं ण ओलोएसि<sup>(१)</sup> ?

नव । (स्वगतम्) अम्म चूअलदिआ ! (प्रकाशम्) हला चूअ  
लदिए, भट्टिणीणिओअमणुचिट्टन्तीए मइ तुवरए  
ण उवलक्खिदा सि, ता मरिसेहि दाव इमं  
अदिकमं<sup>(२)</sup> ।

चूत । ण क्खु अदिकमं एत्थ पेक्खामि । इमं तु पुच्छा-  
मि, कहिं अविलंबिदे कम्मे भट्टिणीए णिउत्ता सि  
जेण एव्वं तुवरइ<sup>(३)</sup> ?

नव । भअवदीमाआरेदुं<sup>(४)</sup> ।

चूत । कहिं णिमित्ते<sup>(५)</sup> ?

(१) अयि नवमालिके, कुत्र पुनरेवं सत्वरं प्रस्थिताऽसि; येन समीपव-  
र्त्तिनीमपि मां नावलोकयसि ?

(२) अहो चूतलतिका ! अयि चूतलतिके, भर्त्रीनियोगमनुतिष्ठन्त्या-  
मया त्वरया नोपलक्षिताऽसि । तन्मर्षय तावदिममतिक्रमम् ।

(३) न खल्वतिक्रममत्र पश्यामि । इदन्तु पृच्छामि । कस्मिन्नविलम्बिते  
कर्मणि भर्त्या नियुक्ताऽसि, येनैवं त्वर्यते ?

(४) भगवतीमाकारयितुम् ।

(५) कस्मिन् निमित्ते ?



नव । असुस्थसरीरा भट्टिदारिआ त्ति । तुमं उण कहिं  
पत्थिदासि<sup>(१)</sup> ?

चूत । पमदवणं<sup>(२)</sup> ।

नव । किं त्ति<sup>(३)</sup> ?

चूत । सुणाहि । असुस्थसरीरा भट्टिदारिआ अप्पाणं  
विणोदेउं पमदवणं गमिस्सदि<sup>(४)</sup> ।

नव । जइ भट्टिदारिआए पमदवणं गमेअव्वं ता किं  
त्ति तुमं दाणिं तत्थ यासि<sup>(५)</sup> ?

चूत । आणत्तं अज्जए सुन्दरीए, जधा, हज्जे, चूअ-  
लदिए, पमदवणं णिज्जणं कदुअ तुमे अहं संह-  
दव्वा, तदे पिअसहिंसहिआ तत्थ गमिस्सं<sup>(६)</sup> ।

(१) असुस्थशरीरा भर्तृदारिकेति । त्वं पुनः कुत्र प्रस्थिताऽसि ?

(२) प्रमदवनम् ।

(३) किमिति ?

(४) ष्टुणा । असुस्थशरीरा भर्तृदारिका आत्मानं विनोदयितुं प्रमदवनं  
गमिष्यति ।

(५) यदि भर्तृदारिकया प्रमदवनं गन्तव्यं, तत् किमिति त्वमिदानीं तत्र  
यासि ?

(६) आक्षप्ताऽस्मि आर्य्या सुन्दर्या, यथा, अथि चूतलतिके, प्रमदवनं  
निर्जनं कृत्वा त्वयाऽहं सम्भावयितव्या । ततः प्रियसखीसहिता तत्र  
गमिष्यामि ।

नव । हला चूअलदिए, आसणपरिअणो तुमं भट्टि-  
दारिआए इमादो कालणादो किं पि पुच्छिदु-  
आमा म्हि<sup>(१)</sup> ।

चूत । हला णोमालिए, पुच्छ विस्सङ्गं यं सि पुच्छिदु-  
आमा<sup>(२)</sup> ।

नव । एदं पुच्छामि, अवि णाम जाणिज्जइ तुम्मेहिं  
का पीडा भट्टिदारिआए त्ति<sup>(३)</sup> ।

चूत । कथं अम्मेहिं जानीअदु । णं वेज्जा अवि एत्थ  
मूढा सम्बुत्ता<sup>(४)</sup> ।

नव । (सविस्मयम्) किं वेज्जेहिं पि ण णिच्चिदो विआर-  
हेदू<sup>(५)</sup> ?

चूत । अधइं<sup>(६)</sup> ।

(१) अयि चूतलतिके, आसणपरिजनस्वं भट्टिदारिकायाः, अतः कारणात्  
किमपि प्रष्टुकामाऽस्मि ।

(२) अयि नवमालिके, पृच्छ विस्मयं यदसि प्रष्टुकामा ।

(३) एतत् पृच्छामि । अपि नाम ज्ञायते युष्माभिः का पीडा भट्टिदारि-  
कायाः ? इति ।

(४) कथमस्माभिर्ज्ञायताम् । ननु वैद्या अध्येतस्मिन् मूढाः संबुत्ताः ।

(५) किं वैद्यैरपि न निश्चितो विकारहेतुः ।

(६) अथकिम् ।

नव । जइ एव्वं कथं दाणिं चिइस्सिज्जइ<sup>(१)</sup> ?

चूत । विरत्ता चिइस्सत्ता<sup>(२)</sup> ।

नव । (सविषादम्) हद्दो हद्दो एत्तिअमत्तावि पीडा ण  
णिच्चिदा, कथं एदे चिइस्सत्तणं अप्पणो वोल्लन्तो  
ण लज्जन्ति<sup>(३)</sup> ।

चूत । (निःश्वस्य) किं करोअदु । ण कखु साहारणो  
अअं आअङ्को । सा कखु कसणपच्छ ससिअला  
विअ अणुदिणं झिज्जइ अंगेसुं । मिलाअमाणक-  
मलिणीं विअ णं महुरा च्छाहा णवर ण मुंचइ<sup>(४)</sup> ।

नव । कदमो उण एत्थ उवाओ होहिइ<sup>(५)</sup> ?

चूत । देव्वं जाणइ । सुंदरो उण भणइ अहं अस्मिं  
चिइस्सत्तो त्ति<sup>(६)</sup> ।

(१) यद्येवं कथमिदानीं चिकित्स्यते ?

(२) विरताश्चिकित्सकाः ।

(३) हा धिक् हा धिक् । एतावन्मात्राऽपि पीडा न निश्चिता, कथमेते  
चिकित्सकत्वमात्मनो वदन्तो न लज्जन्ते ?

(४) किं क्रियताम् । न खलु साधारणोऽयमातङ्कः । सा खलु दृष्टापक्ष-  
प्रशिक्षलेवानुदिनं क्षीयतेऽङ्गेषु । स्नायत्कमलिनीमिवैनां मधुरा  
च्छाया केवलं न मुञ्चति ।

(५) कतमः पुनरेतस्मिन्नुपायो भविष्यति ।

(६) दैवं जानाति । सुन्दरी पुनर्भणति अहमत्र चिकित्सकइति ।

नव । सव्वं तस्मिं संहवेद्व्यइ । चउरा क्व सा<sup>(१)</sup> ।

चूत । अविअहवअणा दाणिं होदु<sup>(२)</sup> ।

नव । हला चूअलदिए, एव्वं पि भवे<sup>(३)</sup> ? (कर्णे कथयति) ।

चूत । सखि, किं अम्हाणं इमिणा विअक्किदेण ।

ण क्वु अणुभिस्सो अअं अत्यो अम्हेहिं जीहग्गे कादुं  
सक्किज्जइ । किं तु जइ तुह तक्को संवालइ, तइआ  
सोहणं होइ<sup>(४)</sup> ।

नव । कधं विअ<sup>(५)</sup> ।

चूत । णं उवारूढजेव्वणा दाणिं भट्टिदारिआ<sup>(६)</sup> ।

नव । अदेज्जेव मह एसो तक्को<sup>(७)</sup> ।

चूत । जुज्जइ । (प्रतीचीं दिशमवलोक्य) समागतप्याआ सं

(१) सव्वं तस्यां सम्भाव्यते । चतुरा खलु सा ।

(२) अवितथवचना इदानीं भवतु ।

(३) अथि चूतलतिके, एवमपि भवेत् ?

(४) सखि, किमस्माकमनेन वितर्कितेन । न खल्वनुद्धिन्नोऽयमर्थोऽस्मा-  
भिर्जिज्ञाये कर्तुं शक्यते । किन्तु यदि तव तर्कः संवदति, तदा  
शोभनं भवति ।

(५) कथमिव ?

(६) ननु उपारूढयौवनेदानीं भर्तृदारिका ।

(७) अतएव ममैष तर्कः ।



ज्ञा, ता भट्टिणीणिञ्चोञ्चं अणुचिदु, अहं पि णवरि  
करणिज्जं करेमि<sup>(१)</sup> ।

नव । एसा गच्छामि । (इति परिक्रम्य पुनः परिवृत्त्य) हला

चूअलदिण, मा दाव णं तक्कं कस्सवि कहेहि<sup>(२)</sup> ।

चूत । वीसत्या होहि<sup>(३)</sup> ।

नव । णिव्वुदोमिहि<sup>(४)</sup> । (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता) ।

चूत । (परिक्रम्य) इमं प्रमदवणं ण को वि जणो इमस्सिं

दीसइ, ता गदुअ अज्जाणं सुंदरीए णिवेदेमि<sup>(५)</sup> ।

(इति परिक्रामति ।)

(नेपथ्ये)

इदो इदो पिअसही<sup>(६)</sup> ।

चूत । (कण्ठं दत्त्वा) अम्म! एसा अज्जा सुंदरी भट्टि-

(१) युज्यते । समागतप्राया सन्ध्या, तद्भूर्त्तनियोगमनुतिष्ठ । अहमप्यन-  
न्तरकरणीयं करोमि ।

(२) एसा गच्छामि । अथि चूतलतिके, मा तावदेणं तक्कं कस्यापि कथय ।

(३) विश्वस्ता भव ।

(४) निर्दृताऽस्मि ।

(५) इदं प्रमदवनं न कोऽपि जनोऽत्र दृश्यते, तद्गत्वा आर्यायै सुन्दर्यै  
निवेदयामि ।

(६) इतइतः प्रियसखी ।



दारिद्र्यासहित्रा इदोज्जेव आच्छदि, ता अविलं-  
वं सहावेमि णं<sup>(१)</sup> । (इति द्रुतपदं परिक्रम्य निष्क्रान्ता) ।

(प्रवेशकः) ।

(नेपथ्ये कौमुद्याः प्रावेशिक्याक्षिप्तिका) ।

मङ्गअरविओअविङ्गरा मदलमुही माहवी समुल्लसद् ।

सुज्जकरफंसकवलिअमिलाणकन्ती ण पुव्वं व्वं<sup>(२)</sup> ॥

(ततः प्रविशति कामयमानावस्था कौमुदी सुन्दरी कालिन्दी चूतलतिका च)  
सुन्द । हला कोमद्, पेक्ख पेक्ख पवणलोलोहिं  
पल्लवेहिं अग्गहत्थेहिं विअ आअारेद् तुमं पमद्  
वणं, पविस दाव णं<sup>(३)</sup> ।

(सर्वाः प्रवेशं रूपयन्ति) ।

कालि । इमं सिलाअलं अस्सेम<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । जधा दे रोअदि<sup>(५)</sup> ।

(१) अहो एषा आर्या सुन्दरी भर्तृदारिकासङ्घिता इतएवागच्छति,  
तदविलम्बं सम्भावयाम्येनाम् ।

(२) मधुकरवियोगविधुरा मलिनमुखी माधवी समुल्लसति । सूर्यकर-  
स्पर्शकवलितस्नानकान्तिः न पूर्वमिव ॥

(३) अथि कौमुदि, पश्य पश्य पवनलोलैः पल्लवैरग्रहस्तैरिवाकारयति  
त्वां प्रमदवनं, प्रविश तावदेनत् ।

(४) इदं शिलातलमाश्रयामः ।

(५) यथा ते रोचते ।

(सर्वा उपविशन्ति) ।

कालि । सहि, पेक्ख पेक्ख, एसो पाडलपुप्फप्पराअ-  
मन्यरो मिउलसंचारी दीहिआजलसीअलो सुह-  
प्फंसो वाओ आआमइ तुज्जे मुहअमलसेअजा-  
लअं<sup>(१)</sup> ।

(कौमुदी तृष्णीमास्ते) ।

सुन्द । इदो दाव पेक्ख, एदे वउलामोअमत्ता  
महुअरा मिलाणामिलाणविणअमन्यरा पए पए  
पआरिअन्ति<sup>(२)</sup> ।

(कौमुदी भ्रमरशब्दं सूचयित्वा चासं रूपयति) ।

कालि । (ससंभ्रमम्) हला सुन्दरि, पेक्ख पेक्ख आ-  
अङ्गवाउलां पिअसहीं<sup>(३)</sup> ।

सुन्द । हला सहि, कोमइ, किमेव्वं तम्मसि<sup>(४)</sup> ?

(१) सखि, पश्य पश्य, एष पाटलपुष्पपरागमन्यरो मृदुलसञ्चारी  
दीर्घिकाजलशीतलः सुखस्पर्शावातआचामति तव सुखकमलस्वेद-  
जालकम् ।

(२) इतस्तावत् पश्य, एते वकुलामोदमत्ता मधुकरा स्नानान्स्नान-  
विवेकमन्यराः पदे पदे प्रतार्थ्यन्ते ।

(३) अयि सुन्दरि, पश्य पश्यातङ्गव्याकुलां प्रियसखीम् ।

(४) अयि सखि, कौमुदि, किमेवं ताम्यसि ?

(कौमुदी तथैवास्ते) ।

सुन्द । णं भणामि सहि कोमइ, त्ति<sup>(१)</sup> ।

कौमु । (प्रकृतिस्या भूत्वा) हला सुन्दरि, किं कहेसि ?<sup>(२)</sup>

सुन्द । णं पुच्छामि, किमेवमद्वारे कादरासि जादा<sup>(३)</sup> ?

कौमु । कथं कादरा हेमि<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । कथं ण कादरासि, अणुदिणं अहिअअरं मि-  
लाना दीससि, ता कहेहि कुदो इदं अवत्यन्तरं,  
जेण जाणिअ अहे वि पडिआरवरा होम्म । अलं  
सुउमारमप्पाणमाआसिअ<sup>(५)</sup> ।

कालि । सोहणं वालइ सुन्दरी<sup>(६)</sup> ।

कौमु । किं कहेमि<sup>(७)</sup> ।

(१) ननु भणामि सखि कौमुदि, इति ।

(२) अयि सुन्दरि, किं कथयसि ?

(३) ननु पृच्छामि किमेवमस्थाने कातराऽसि जाता ?

(४) कथं कातरा भवामि ।

(५) कथं न कातराऽसि, अनुदिनमधिकतरं स्नाना दृश्यसे, तत् कथय  
कुतइदमवस्थान्तरं, येन ज्ञात्वा वयमपि प्रतिकारपरा भवामः ।  
अलं सुकुमारमात्मानमायास्य ।

(६) शोभनं वदति सुन्दरी ।

(७) किं कथयामि ।

सुन्द । परे वित्र अन्हे पच्चेसि<sup>(१)</sup> ।

कौमु । ए क्वु ए क्वु, उच्छसित्रं मे तुज्जे<sup>(२)</sup> ।

सुन्द । कथमेव्वं संभवइ, जइ अन्हेहिं अंसग्गहणेण

दुक्खभारस्स तुह लहुदा ए करीअदि<sup>(३)</sup> ।

कालि । हला कोमइ, अविअहं वेअइ सुन्दरी । सम-

दुक्खसुहोक्खु सहीअणो होइ<sup>(४)</sup> ।

कौमु । (खगतम्) का गई । (प्रकाशम्, निःश्वस्य) कस्स वा

अण्णस्स कहिस्सं । लज्जामि उण कहेउं<sup>(५)</sup> ।

(इति सलज्जमधोसुखी तिस्रति) ।

सुन्दरीकालिन्द्यौ । कहेहि कहेहि, अन्हेसुं वि ल-  
ज्जसि?<sup>(६)</sup> ।

कौमु । अलं काहेउण, अप्पडिक्कज्जो अत्रमाअक्को<sup>(७)</sup> ।

सुन्दरीकालिन्द्यौ । सुण्णो दाव<sup>(८)</sup> ।

(१) परानिवास्मान् प्रत्येषि ।

(२) न खलु न खलु, उच्छसितं मे यूयम् ।

(३) कथमेवं सम्भवति, यद्यस्माभिरंशग्रहणेन दुःखभारस्य तव लघुता न क्रियते ।

(४) अथि कौमुदि, अवितथं वक्ति सुन्दरी । समदुःखसुखः खलु सखी-जनो भवति ।

(५) का गतिः । कस्य वा अन्यस्य कथयिष्यामि । लज्जे पुनः कथयितुम् ।

(६) कथय कथय, अस्मास्वपि लज्जसे ?

(७) अलं कथयित्वा । अप्रतिकार्योऽयमातङ्कः ।

(८) शृणुवस्तावत् ।



कौमु । अलं तुम्हे आआसिअ<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । अदोज्जेव णिव्वन्धो । सहिउं सक्किहिइ क्वु एव्वं  
वेअणा<sup>(२)</sup> ।

कालि । हला अलीअसक्किदे, सहीओ क्व अम्हे<sup>(३)</sup> ।

कौमु । जइ वो णिव्वन्धो सुणीअदु<sup>(४)</sup> ।

सुन्दरीकालिन्द्यौ । आहिदाओ म्हे<sup>(५)</sup> ।

कौमु । (सुन्दरीं प्रति) कच्चाअणीजत्तामहुस्सअदिअहे तुमं  
मे संणहिदा आसि<sup>(६)</sup> ।

सुन्द । (सवैलक्ष्यम्) सुमरामि<sup>(७)</sup> ।

कौमु । जआ अहं कुलाअलाअणविस्साममंदिरस्स  
उवरि अलिन्दे डिआ असेअरुक्खमूलडिअं  
सरीरिणं विअ भअवन्तं अणंगं कम्पि पुरिसर-  
अणं अणिमिसेण अच्छिणा णिज्झाअन्तो कण्ड-  
इअसरीरा संबुत्ता, तआ तुमए भणिदं, रूव-

(१) अलं वामायास्य ।

(२) अतएव निर्वन्धः । सोढुं शक्यते खल्वेवं वेदना ।

(३) अयि अलीशक्किते, सख्यौ खल्वावाम् ।

(४) यदि वां निर्वन्धः श्रूयताम् ।

(५) अवहिते स्वः ।

(६) कात्यायनीयात्रामहोत्सवदिवसे त्वं मम सन्निहिता आसीः ।

(७) स्मरामि ।



मुद्घा पत्रङ्गिआ सुहेण अग्गिं पविसइ, कहिम्पि  
मणिप्पहाए अणलब्भमादेा फंसक्खमं रअणम्पि  
लहइ त्ति । दाणिं उण पुच्छसि कुदेाइदं अवत्यन्तरं  
त्ति<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । (सप्रत्यभिज्ञम्) कथं अज्जसुहाअरणिमित्तो अत्र-  
माअङ्को<sup>(२)</sup> ।

कालि । (स्वगतम्) दिट्ठिआ अप्पाणुरुवे जणे अणुरत्ता  
पिअसही । अधआ, सुहाअरं जेव कोमइ अणु-  
सरइ<sup>(३)</sup> ।

(चूतलतिका सम्भङ्गं हर्षं नाटयति) ।

कौमु । (निःश्वस्य) सोअं अप्पट्ठिकज्जो आअङ्को<sup>(४)</sup> ।

(१) यदा अहं कुलावलाजनविश्राममन्दिरस्य उपर्यलिन्दे स्थिता अशोक-  
वृक्षमूलस्थितं शरीरिणमिव भगवन्तमनङ्गं कमपि पुरुषरत्नं अनि-  
मिषेणात्त्या निधायन्ती कण्टकितशरीरा संवृत्ता, तदा त्वया  
भणितं; रूपमुग्धा पतङ्गिका सुखेनाग्निं प्रविशति, कदापि मणि-  
प्रभायामनलभ्रमात् स्पर्शक्षमं रत्नमपि लभते इति । इदानीं पुनः  
पृच्छसि कुत इदमवस्थान्तरमिति ।

(२) कथमार्थसुधाकरनिमित्तोऽयमातङ्कः ।

(३) दिष्ट्या आत्मानुरूपे जने अनुरक्ता प्रियसखी । अथवा, सुधाकर-  
मेव कौमुदी अनुसरति ।

(४) सोऽयमप्रतिकार्यं आतङ्कः ।

सुन्द । ए क्वु अप्पडिकज्जो त्ति तक्केमि<sup>(१)</sup> ।

कौमु । सखीसणेहो वेदभलेइ दे मदिं<sup>(२)</sup> ।

सुन्द । कथं विअ ?<sup>(३)</sup>

कौमु । (सविषादम्) एणं पुरोभाइणि, राअमन्ती वसु-  
मित्तो मं पत्थेइ त्ति सुणीअदि<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । सच्चं सुणीअदि, किं इमम्मि विसाअकालणं ?<sup>(५)</sup>

कौमु । पिआ मे णेहवरअसे एस्सज्जादिसअं पेक्खन्तो  
सुहादिसआ होहिइ त्ति जइ तस्स ज्जेव मंदभाइणीं  
मं<sup>(६)</sup> (इत्यर्द्धोक्ते वाच्यैः कण्ठरोधं रूपयति) ।

कालि । सखि, मा कादरा होहि<sup>(७)</sup> ।

सुन्द । (सङ्घाघमात्मगतम्) अम्म ! सरिसवेइत्तणं पिअ-  
सहीए, जा सम्पदं अगणिइअ गुणं ज्जेव अगदे

(१) न खल्वप्रतिकार्यं इति तर्कयामि ।

(२) सखीसहेहो विङ्गलयति ते मतिम् ।

(३) कथमिव ?

(४) ननु पुरोभागिनि, राजमन्त्री वसुमित्रो मां प्रार्थयते इति श्रूयते ।

(५) सत्यं श्रूयते, किमत्र विषादकारणम् ?

(६) पिता मे स्नेहपरवश एश्वर्यातिशयं पश्यन् सुखातिशयो भविष्य-  
तीति यदि तस्मै एव मन्दभागिनीं मां—

(७) सखि, मा कातरा भव ।

करेइ । (प्रकाशम्) अलं अलं आवेएण । जइ एव्वं  
मणसि, पिदरं गहिदत्थं करेम्ह<sup>(१)</sup> ।

कौमु । मा मा एव्वं, सो ख्खु मह पभवइ<sup>(२)</sup> ।

सुन्द । णं पभवन्ताज्जेव विस्सवेज्जन्ति<sup>(३)</sup> ।

कौमु । ण ख्खु विस्सवणा एसो<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । का उण ?<sup>(५)</sup>

कौमु । णं णिआअणा<sup>(६)</sup> ।

सुन्द । कथं विअ ?<sup>(७)</sup>

कौमु । एव्वं करीअदु त्ति भणित्तं होइ<sup>(८)</sup> ।

सुन्द । अलं पस्सएण, णत्थि अस्सो उवाओ<sup>(९)</sup> ।

(१) अहो सदृशवेदित्वं प्रियसख्याः, या सम्पदमगणयित्वा गुणमेवा-  
ग्रतः करोति । अलमलमावेगेन, यद्येवं मन्यसे पितरं गृहीतार्थं  
कुर्मः ।

(२) मा मैवं, स खलु मम प्रभवति ।

(३) ननु प्रभवन्तएव विज्ञाप्यन्ते ।

(४) न खलु विज्ञापनैषा ।

(५) का पुनः ?

(६) ननु नियोजना ।

(७) कथमिव ?

(८) एवं क्रियतामिति भणितं भवति ।

(९) अलं प्रश्नयेण, नास्त्यन्य उपायः ।

कौमु । अदोज्जेव हदा म्हि मंदभाइणी, सब्बधा  
पुसमणोरहो किदन्तो<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । कथं एव्वं अणुजलं देव्वं उवालहसि<sup>(२)</sup> ?

कौमु । कथं ण उवालहामि ; जेण एव्वं दुल्लहवत्तुम्मि  
विलोहिअ दिआणिसं अहं परिदहिआमि<sup>(३)</sup> ।

सुन्द । (सस्मितम्) विआरहेदुअं अप्पणो जेव्वणं किं  
ण उवालहसि<sup>(४)</sup> ?

कौमु । (सास्त्रयम्) अवेहि दुव्विणीदे अवेहि, ण तुमए  
मन्तिस्सं<sup>(५)</sup> ।

सुन्द । (विहस्य) सच्चं दुव्विणीदा अहं, तुमं उण सुविणी-  
दा, जेा पुरिसदंसणमत्तेण अप्पणो ण पहुवसि<sup>(६)</sup> !

कौमु । अवेहि एदामवत्थां गदए वि मए कीलसि<sup>(७)</sup> ।

सुन्द । ण कीलिस्सं<sup>(८)</sup> ।

(१) अतएव हताऽस्मि मन्दभागिनी, सर्वथा पूर्णमनोरथः कृतान्तः ।

(२) कथमेवमनुकूलं दैवमुपालभसे ?

(३) कथं नोपालभे; येनैवं दुर्लभवस्तुनि विलोभ्य दिवानिष्महं परिदह्ये ।

(४) विकारहेतुकमात्मनो यौवनं किं नोपालभसे ?

(५) अपेहि दुर्विनीते, अपेहि, न त्वया मन्त्रयिष्ये ।

(६) सत्यं दुर्विनीताऽहं, त्वं पुनः सुविनीता, या पुरुषदर्शनमात्रेण आत्म-  
नोन प्रभवसि !

(७) अपेहि एतामवस्थां गतयाऽपि मया क्रीडसि ।

(८) न क्रीडिष्यामि ।



कालि । हला सुन्दरि, अदिमेत्तं क्वु वाहइ पिअ-  
सहीए उवदावो त्ति तक्केमि, ता उवअरम्ह  
दाव णं<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । हला कालिन्दि, एव्वं करेम्ह । हज्जे चूअलदिए,  
उवआरोवअरणं दाव पिअसहीए<sup>(२)</sup> ।

चूत । (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) एदाइं मिणालाइं णलिणी-  
अलाइं च<sup>(३)</sup> । (इत्यर्पयति) ।

(सुन्दरी मृणालवलयदिभिर्नाच्येन कौमुदीमलङ्कृत्य नलिनीदलानि  
हृदयेऽर्पयति, सर्वां नलिनीपत्रैर्वीजयन्ति च । कौमुदी वैक्लव्याधिक्यं  
नाटयति) ।

सुन्द । किं दाणिं अहिअअरं तम्मइ पिअसही<sup>(४)</sup> ?

कौमु । (सखेदम्) किं इमिणा उवआरपरिस्समेण किलि-  
सिअन्ति पिअसहीओ । णं अस्सो जेव प्पआरो  
पहरन्तस्स अणंगस्स । अस्सवंभं एव्व क्वु इन्धणं

(१) अयि सुन्दरि, अतिमात्रं खलु वाधते प्रियसख्या उपताप इति तर्क-  
यामि, तदुपचरावन्तावदेनाम् ।

(२) अयि कालिन्दि, एवं कुर्वः । अयि चूतलतिके, उपचारोपकरणं  
तावत् प्रियसख्याः ।

(३) एतानि मृणालानि नलिनीदलानि च ।

(४) किमिदानीकधिकतरं ताम्यति प्रियसखी ?

कुण्ड उव्वाणलो । असां च सहि<sup>(१)</sup>,  
(संस्कृतमाश्रित्य साखम्)

सन्निपातञ्जरस्यान्तरन्तर्दाहे सुदारुणे ।  
स्तानं यथोपचारोऽयमनर्थायैव भाति मे ॥

अपि च,

धारासारैरपि परिगतो वैद्युताग्निः समन्तात्  
कादम्बिन्याः ज्वलति नितरामन्तरेऽनन्तरायः ।  
सन्तापस्य स्फुरति करणे नूनमन्तःप्रकोपे  
वाह्यैः किं स्यात्तदुपचरणैर्मातश्चिन्तयध्वम् ॥

(इत्यश्रूणि मुञ्चति) ।

सख्यौ । (सविषादम्) आसां आलंवेहि, णलिणी खलु  
दिवाअरविरहे वि आसाए जीविदं धारेइ<sup>(२)</sup> ।  
कौमु । सुलहो खलु से पिओ पेक्खदुं<sup>(३)</sup> ।  
सुन्द । तुह वि ण दुल्लहो त्ति तक्केसि<sup>(४)</sup> ।

(१) किमनोपचारपरिश्रमेण क्लिष्याते प्रियसख्यौ । ननु अन्यएव प्रकारः  
प्रहरतोऽजङ्गस्य, अणवाम्भएव खल्विन्धनं करोत्यौर्वानलः । अन्यच्च  
सखि,

(२) आशामवलम्बस्व, नलिनी खलु दिवाकरविरहेऽप्याशया जीवितं  
धारयति ।

(३) सुलभः खलु तस्याः प्रियः प्रेक्षितुम् ।

(४) तवापि न दुर्लभ इति तर्कयामि ।

कौमु । (सदुःखस्मितम्) सुदु क्वु अस्मासिदा न्हि पित्र-

सहीए, किमसं उवडिआ सुहदिट्टी<sup>(१)</sup> !

सुन्द । अविणाम इच्छीअदि तस्स दिट्टी<sup>(२)</sup> ?

चूत । पच्चासणा<sup>(३)</sup> ।

कालि । को संसत्रो<sup>(४)</sup> ।

कौमु । (निःश्वस्य) ममं किं पुच्छसि, देवं पुच्छ<sup>(५)</sup> ।

चूत । णं भणामि पच्चासणा त्ति<sup>(६)</sup> ।

सुन्द । अइ का<sup>(७)</sup> ?

चूत । भअवदी परिव्वाइआ<sup>(८)</sup> ।

सुन्द । कथं तुमए जाणिअं<sup>(९)</sup> ?

चूत । किं ण सुणंति अत्यभोदीओ<sup>(१०)</sup> ।

(१) सुदु खल्लाश्वासिताऽस्मि प्रियसख्या, किमन्यत् उपस्थिता शुभदृष्टिः ।

(२) अपिनाम इष्यते तस्य दृष्टिः ?

(३) प्रत्यासन्ना ।

(४) कः संशयः ।

(५) मां किं पृच्छसि, दैवं पृच्छ ।

(६) ननु भणामि प्रत्यासन्ना इति ।

(७) अयि का ?

(८) भगवती परिव्राजिका ।

(९) कथं त्वया ज्ञातम् ?

(१०) किं न पृच्छन्ति अत्रभवत्यः ।

सुन्द । किं त्ति<sup>(१)</sup> ।

चूत । सुण्ण<sup>(२)</sup> ।

(सर्वा आकर्णयन्ति) ।

(नेपथ्ये)

आद्ये तत्त्वेऽभ्युदयति परस्मैर्यलाभाद्विलोलै-  
स्यक्त्वा तावद्विगुणकलुषा भूमिकास्तिस्त्रएव ।  
योऽसौ साक्षान्नियमितमरुत्प्राप्तयोगाधिकारै-  
रन्तर्मृग्यस्तमखिलगुरुं चेतसा चिन्तयामि ॥

(सर्वाः किञ्चित् सम्भ्रान्ताः । कौमुदी नलिनीदलादीनि गोपायितु-  
मारभते । ततः प्रविशति परिव्राजिका । सर्वा उत्तिष्ठन्ति) ।

परि । (विलोक्य) अलमलमायासेन । भस्मच्छन्नोऽप्य-  
नलोनिपुणैरुपलक्ष्यतएव ।

कौमु । (सलज्जम्) भञ्जवदि वन्दामि<sup>(३)</sup> ।

(सर्वाः प्रणमन्ति) ।

परि । एकायनं तरललोलतरस्य काम्यो-  
यश्चेतसो हृदि विलोक्यतएव साक्षात् ।  
कन्दर्पदर्पशमनः परनिर्वृतीनां  
दाता मनोरथसखस्तमिमं भजस्व ॥

(१) किमिति ?

(२) ष्टणुत ।

(३) भगवति, वन्दे ।



सुन्द । इमं सिलाञ्जलं गेण्हातु भञ्जवदी<sup>(१)</sup> ।

(कौमुदी सत्रपाऽधोमुखी मृणालवलययादीनि शनैरपसारयति) ।

परि । यूयमप्युपविशत ।

(सर्वा उपविशन्ति) ।

परि । (कौमुदीमवलोक्य) अलमात्मानमायास्य ।

ज्ञायच्छिरीषकुसुमोपमकान्तिमन्ति

भास्वद्वियोगविधुराञ्जसमान्यमूनि ।

उच्चैर्निसर्गरुचिरत्वमनोरमाणि

नाङ्गानि ते न कथयन्तितरामवस्थाम् ॥

अपिच । वत्से,

उषसि नितरां पाण्डुः साक्षान्मृगाङ्कइवानिशं

सुतनु, वदनं वाधामुग्रां व्यनक्ति हृदि स्थिताम् ।

अनुदिनपरिचामक्षामा सहस्यदिनात्यये

रजनिरिव ते मूर्त्तिश्चित्तं दुनोति मनस्विनाम् ॥

मामपि न परामवगन्तुमर्हसि, द्वितीयां मां जननी-  
मवगच्छ, तदावेदय प्रभवमस्य ।

(कौमुदी सलज्जमधोमुखी तूष्णीमास्ते) ।

सुन्द । एसा णिवेदेमि, लज्जइ कखु ऐसा वोल्लिदुं ।

इमस्मिं दाव उवप्पए भञ्जवदीचलणा ज्जेव अन्हाणं

(१) इदं शिलातलं गृह्णातु भगवती ।

ओलंवणं, ता वच्छाण इमाण किवां कादुं अरि  
हेइ भअवदी<sup>(१)</sup> ।

कौमु । (जनान्तिकम्) विरम दाव, लज्जामि क्खु अहं  
भअवदीए मुहं दंसेदुं<sup>(२)</sup> ।

सुन्द । हला अलीअलज्जिदे, रक्खिदव्वो क्खु अप्पा<sup>(३)</sup> ।  
परि । (निःश्वस्य) आन्तरः स्नेहो न खल्वन्यस्मै दर्शयितुं  
शक्यः, लिङ्गादपि तावदवगन्तुमर्हसि ।

सुन्द । सखीसणेहो मं वाउलेइ भअवदीए प्पसादो  
वि मुहरेदि, ता क्खमदु मं भअवदी<sup>(४)</sup> ।

परि । अपराधी किल क्षम्यते ।

सुन्द । जाणमु किवां भअवदीए<sup>(५)</sup> ।

परि । प्रत्ययमिदानीं श्रोतुमिच्छामि ।

सुन्द । सुणादु भअवदी । जो अह धम्मकेकदानन्तरो

(१) एषा निवेदयामि, लज्जते खल्वेषा वदितुम् । अस्मिन् तावदुपसृजे  
भगवतीचरणावेवास्माकमवलम्बनम् । तद्वत्साधामस्यां कृपां कर्तुम-  
र्हति भगवती ।

(२) विरम तावत् । लज्जे खल्वहं भगवत्यै मुखं दर्शयितुम् ।

(३) अयि अलीकलज्जिते, रक्षितव्यः खल्लात्मा ।

(४) सखीस्नेहोमां व्याकुलयति भगवत्याः प्रसादोऽपि मुखरयति, तत्  
क्षमतां मां भगवती ।

(५) जानीमः कृपां भगवत्याः ।

सञ्जलविज्जापारदंसी दञ्जावन्तो जुत्तव्वहारे  
सच्चणिट्ठो विण्णई गुणरासी विञ्च मुत्तिमन्तो सु-  
हाञ्जरो णाम<sup>(१)</sup> ।

परि । स खलु महात्मा सुधाकरः ।

(कौमुदी हर्षं नाटयति) ।

सुन्द । तं पिञ्चसहीए अणुराञ्जभाञ्जणं अगच्छदु  
भञ्जवदी<sup>(२)</sup> ।

(कौमुदी सासूयं सुन्दरीमङ्गल्या ताडयति) ।

परि । तस्मिन् गुणानां प्रभवेऽनुरक्ता

स्नायानुरूपे यदि वः सखीयम् ।

ब्रीडाऽत्र का धर्मपथं प्रपन्ना

अद्भ्या सती तत्त्वविदां न वाच्या ॥

तदहमपि समीहितसिद्धये यतिष्ये ।

सुन्द । जह भञ्जवदी आणवेदि<sup>(३)</sup> ।

कौमु । (सहर्षमात्मगतम्) अमिञ्चं क्वु वञ्चणं भञ्जव-  
दीए<sup>(४)</sup> ।

(१) ष्टणोतु भगवती । यौऽसौ धर्मैकतानन्तरः सकलविद्यापारदर्शी  
दयावान् युक्तव्यवहारः सत्यनिष्ठो विनयी गुणराशिरिव मूर्त्तिमान्  
सुधाकरो नाम ।

(२) तं प्रियसख्या अनुरागभाजनमवगच्छतु भगवती ।

(३) यथा भगवती आज्ञापयति ।

(४) अमृतं खलु वचनं भगवत्याः ।

परि । कथं पुनरस्मिन् श्लाघनीयेऽपि विषये उपप्लव-  
व्यपदेशइति न खल्वधिगच्छामि ।

सुन्द । ए क्वु इमो उवप्पवो<sup>(१)</sup> ।

परि । कः पुनः ?

सुन्द । वसुमित्तो णो पिअसहो पत्थेइ<sup>(२)</sup> ।

परि । स्वतन्त्रः खल्वसौ किमत्र क्रियताम् ।

(कौमुदी विषादं नाटयति) ।

सुन्द । यं भअवदीए रोअदि । ए क्वु एसा सुहाअरं  
उज्झिअ अस्सिं भाववन्धं कुणहिइ<sup>(३)</sup> ।

परि । अयि मुग्धे, एतदपि वक्तव्यम् !

सुन्द । सर्वथा भअवदी अम्हाणं गई । को उण एत्थ  
उवाओ होहिइ<sup>(४)</sup> ?

परि । (स्मितं कृत्वा) न खलु यो यत् प्रार्थयते स तल्लभ-  
तएव ।

सुन्द । जइ पिदा णं तस्स पडिवादेइ<sup>(५)</sup> ।

(१) न खल्वयमुपप्लवः ।

(२) वसुमित्तो नः प्रियसखीं प्रार्थयते ।

(३) यद्भगवत्यै रोचते । न खल्वेषा सुधाकरमुज्झित्वा अन्यस्मिन् भाव-  
वन्धं करिष्यति ।

(४) सर्वथा भगवती अस्माकं गतिः । कः पुनरत्रोपायो भविष्यति ?

(५) यदि पिता एनां तस्मै प्रतिपादयति ?



परि । निश्चिन्तेदानीं भव, शङ्करा खल्वहम् ।

(कौसुदी परितोषं नाटयति) ।

सुन्द । अणुगृहीता न्ह<sup>(१)</sup> ।

परि । कुत्र पुनर्वत्सया दृष्टः सुधाकरः ?

सुन्द । कच्चाअणीजत्तामहुस्सवे<sup>(२)</sup> ।

परि । युज्यते ।

सुन्द । तं उण अच्चरीयं संवुत्तम्<sup>(३)</sup> ।

परि । कथमिव ?

सुन्द । ण क्वु दंसणमत्तेण अणुरज्जीअदि<sup>(४)</sup> ।

परि । किमचाश्चर्यम् । पश्य,

क्षेत्रं प्रविश्य ननु तत्क्षणमेव तोयं

साक्षादमुख्य सदृशं परिणाममेति ।

चेतोऽप्यवाप्य विषयं परिकाङ्क्षणीयम्

अज्ञाय जातु खलु तन्मयतामुपैति ॥

नूनमनेन दैवमनुकूलं तर्कयामि ।

सुन्द । कथं विअ<sup>(५)</sup> ?

(१) अनुगृहीताः स्मः ।

(२) कात्यायनीयात्रामहोत्सवे ।

(३) तत्पुनराश्चर्यं संवृत्तम् ।

(४) न खलु दर्शनमात्रेणानुरज्यते ।

(५) कथमिव ?

परि । नायमतिगूढस्तर्कः । कुतः ?

आलोक्यन्ते जगति कति न प्रेक्षणीयाः मनुष्याः  
किन्वात्मीयो हरति हृदयं दृष्टमात्रः प्रसह्य ।  
सन्त्येवोच्चैर्मधुरललितप्रार्थनीयाः पदार्था-  
श्चन्द्रं प्रेक्ष्य द्रवति सहसा केवलं चन्द्रकान्तः ॥

अपिच,

सान्निध्यमात्रात् यत्किञ्चित् कुत्रचित् प्रतिविम्बते ।  
दैवस्यैव निदेशोऽयं रागोऽन्यः स्फुटिके यथा ॥

(दिशमवलोक्य)

कथं कथाप्रसङ्गेन सन्ध्याऽतिक्रमोऽपि नोपलक्षितः!

सम्प्रति हि

कालेन संरूढपदो भविष्य-  
न्नल्पोऽन्धकारः शनकैरुपैति ।  
दोषाप्रसङ्गाद्विमलेऽपि लोके  
पाप्मेव साक्षादविलक्ष्यजन्मा ॥

त्वरयते मां सायन्तनो विधिः, साधयामस्तावत् ।

(इत्युत्तिष्ठति) ।

(सर्वाः प्रणमन्ति) ।

परि । समीहितसिद्धिभूयात् । (इति निष्क्रान्ता) ।

सुन्द । हला कोमड्, इह ज्जिव सीअलप्पदेसे णिव्वि-  
सीअदु प्पञ्जासो<sup>(१)</sup> ।

(१) अयि कौमुदि, इहैव शीतलप्रदेशे निर्विषयतां प्रदोषः ।

कौमु । बाहिरे अच्छन्ति मे सारिआओ<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । हञ्जे चूअलदिए, तुमं दाव घरं पावेहि सारि-  
आओ<sup>(२)</sup> ।

चूत । तह<sup>(३)</sup> (इतिनिष्क्रान्ता) ।

कालि । अहमिपि साहेमि<sup>(४)</sup> ।

कौमु । किं त्ति<sup>(५)</sup> ?

कालि । अत्थि मे प्पओअणविसेसो<sup>(६)</sup> ।

कौमु । हला सुन्दरि, अहेवि गच्छामो<sup>(७)</sup> ।

कालि । चिड्डु पिअसही, इअं अहं आगदा ज्जेव<sup>(८)</sup>  
(इतिनिष्क्रान्ता) ।

(कौमुदी दक्षिणानिलसपुं सूचयित्वा विषादं नाटयति) ।

सुन्द । हला कोमइ, अलाहि विसाएण, अस्सत्या  
दाणिं हेहि<sup>(९)</sup> ।

(१) वहिः सन्ति मे सारिकाः ।

(२) अयि चूतलतिके, त्वं तावत् गृहं प्रापय सारिकाः ।

(३) तथा ।

(४) अहमपि साधयामि ।

(५) किमिति ?

(६) अस्ति मे प्रयोजनविशेषः ।

(७) अयि सुन्दरि, आवामपि गच्छावः ।

(८) तिष्ठतु प्रियसखी, इयमहमागतैव ।

(९) अयि कौमुदि, अलं विषादेन, आम्बलेदानो भव ।

कौमु । (निःश्वस्य) दूरत्रदे मे मणोरहो<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । एण क्वु भत्रवदी अलीअं मन्तेदि<sup>(२)</sup> ।

कौमु । जाणामि एदं, भाअहेअं उण णोगच्छामि ।

तादो वा कथं मण्ड<sup>(३)</sup> ?

सुन्द । मा संकेहि, तादोवि भत्रवदीमुहादो ग्गही-

दथो ए दे परिवन्थी होहिइ त्ति तक्केमि<sup>(४)</sup> ।

कौमु । एण क्वु अविणीदा अणुअम्पिज्जइ त्ति वेवइ

मे हिअअं<sup>(५)</sup> ।

सुन्द । को उण इमस्मिं अविणओ ? एणं वहीओ वि

कुलकणआओ एव्वं अविणीदाओ सुणीअन्ति<sup>(६)</sup> ।

कौमु । परवदी क्वु अहं<sup>(७)</sup> ।

सुन्द । (सस्मितम्) एण क्वु सच्छन्दो जेव अज्जसुहाअरस्स

अंकं आरूढा सि<sup>(८)</sup> ?

(१) दूरगतोमे मनोरथः ।

(२) न खलु भगवती अलीकं मन्त्रयति ।

(३) जानाम्येतत्, भागधेयं पुनर्नावगच्छामि । तातो वा कथं मन्यते ?

(४) मा शङ्कस्व, तातोऽपि भगवतीमुखाद्गृहीतार्थो न ते परिपन्थी भविष्यति इति तर्कयामि ।

(५) न खल्वविनीता अनुकम्पते इति वेपते मे हृदयम् ।

(६) कः पुनरत्राविनयः ? ननु वक्त्रोऽपि कुलकन्यका एवमविनीताः श्रूयन्ते ।

(७) परवती खल्वहम् ।

(८) न खलु सच्छन्दादेव आर्यसुधाकरस्याङ्गमारुढाऽसि ?



कौमु । (सास्त्रयम्) अवेहि ण तुमए मन्तिस्सं<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । जुज्जदि<sup>(२)</sup> ।

कौमु । (सरोषम्) किं इमस्मि जुज्जदि<sup>(३)</sup> ?

सुन्द । किमस्सं, अज्जसुहाअरेणमन्तेउं इच्छसि<sup>(४)</sup> ।

कौमु । एस तुह अप्पणो अहिलासानुरूवा कथा<sup>(५)</sup> ।

सुन्द । (सस्मितम्) पेक्खहिमु कस्स एव्वं अहिलासे ।

अथआ । पेक्खामो<sup>(६)</sup> ।

कौमु । (साशङ्कम्) हला सुन्दरि, अलाहि कीलिउण,  
पभवइ ख्खु मे तादो । ता भअवदीसआसादो  
गेल्लिदत्थस्स तादस्स कथं मुहं दंसेहिमि त्ति जं  
सच्चं विलीइअइ विअ मे हिअअं<sup>(७)</sup> ।

सुन्द । पभवइ दे तादो सरीरमत्तस्स ण मणस्स ।

(१) अपेहि न त्वया मन्त्रयिष्ये ।

(२) युज्यते ।

(३) किमत्र युज्यते ?

(४) किमन्यत्, आर्य्यसुधाकरेण मन्त्रयितुमिच्छसि ।

(५) एषा तवात्मनोऽभिलाषानुरूपा कथा ।

(६) द्रक्ष्यामः कस्याएवमभिलाषः । अथवा । पश्यामः ।

(७) अयि सुन्दरि, अलं क्रीडित्वा । प्रभवति खलु मे तातः । तत् भगवती-  
सकाशाद्गृहीतार्थस्य तातस्य कथं मुखं दर्शयिष्यामि इति यत्  
सत्यं विलीयतइव मे हृदयम् ।

अवित्र । अलीअसंकिदे, अणुरववराहिलासां तुमं  
सुणिअ तादेवि संतुडो होहिइ<sup>(१)</sup> ।

(नेपथ्ये) .

धूलीभिर्भृशमुत्थिताभिरभितः संच्छादयन् दिङ्मुखं  
वृक्षाणामथ शुष्कपत्रनिवहं भूयः क्षिपन् धुक्षितः ।  
उच्चैरानमयंश्च तान् दृणचयं द्रागुत्क्षिपन् दूरतो-  
वातोऽयं समुपस्थितो वहिरवस्थानान् जनान् पौडयन् ॥

(उभे वात्यावाधां रूपयतः) ।

सुन्द । हला कोमइ, णादिसंणिहिदमन्तेउरं ता एहि

उज्जाणमन्दिरं ज्जेव संस्सेम<sup>(२)</sup> ।

कौमु । हला सुन्दरि, एवं करमु<sup>(३)</sup> ।

सुन्द । इदो इदो पिअसही<sup>(४)</sup> । (उभे परिक्रामतः) ।

सुन्द । इमं उज्जाणमन्दिरं पविसेदु पिअसही<sup>(५)</sup> ।

(उभे प्रविशतः) ।

(ततः प्रविशति सुधाकरः) ।

(१) प्रभवति ते तातः शरीरमात्रस्य न मनसः । अपिच । अलीकशङ्किते,

अनुरूपवराभिलाषां त्वां श्रुत्वा तातोऽपि सन्तुष्टो भविष्यति ।

(२) अयि कौमुदि, नातिसन्निहितमन्तःपुरं, तदेहि उद्यानमन्दिरमेव  
संश्रयावः ।

(३) अयि सुन्दरि, एवं कुर्वः ।

(४) इतइतः प्रियसखी ।

(५) इदमुद्यानमन्दिरं प्रविशतु प्रियसखी ।

कौमु । (विलोक्य सभयम्) हला सुन्दरि, को णु क्वु अञ्चं  
दीसइ<sup>(१)</sup> ?

(ततः प्रविशति सुधाकरः) ।

सुन्द । (उपहृत्य निरूप्य च स्वगतम्) कथं अज्जसुहाअरो !  
होदु एव्वं दाव । (प्रकाशम्) को उण तुमं अणणुसा-  
विअ एव्व कुलाअलाअणवीसाममन्दिरं पइड्ढो  
सि<sup>(२)</sup> ?

सुधा । (सविनयम्) आर्य्ये, सविधेन पथा सच्चरन्  
वात्यावाधया निपीडितोऽभ्यर्णमिदं मन्दिरं प्रवि-  
ष्टोऽस्मि । मर्षय तावदेतत् ।

सुन्द । (सहासम्) धिदो कुम्भीलओ वोलइ “मगममादो  
आगदो” त्ति<sup>(३)</sup> ।

सुधा । आर्य्ये, नूनमहमपराधी, तथापि नैवं प्रति-  
पत्तुमर्हसि ।

सुन्द । (सस्मितम्) को संसओ, पुसदंसणो साह्ण क्वु

(१) अयि सुन्दरि, कोनु खल्वयं दृश्यते ?

(२) कथमार्य्यसुधाकरः ! भवतु एवं तावत् । कः पुनस्वमननुज्ञाप्यैव  
कुलावलाजनविश्राममन्दिरं प्रविष्टोऽस्मि ?

(३) घृतः कुम्भिलकोवदति — “मार्गममादागतः” — इति ।

सि ! चिद् दाव, जाव इमस्स साहुस्स वुत्तन्तं पिअ-  
रस्स पुण्णकित्तिस्स णिवेदिस्सं<sup>(१)</sup> । (इति प्रस्थिता) ।

सुधा । अलमलमन्यथा सम्भाव्य । सुधाकरः खल्वहम् ।  
कौमु । (सहर्षविस्मयमात्मगतम्) अस्म कथं सो ज्जेव महा-  
भाओ<sup>(२)</sup> !

सुन्द । (ससम्भ्रमविनयमञ्जलिं बध्वा) अज्ज, जं ममाइ मूढाइ  
अज्जे अविणओ किदो तं क्वमिदुं अरिहेइ  
अज्जो<sup>(३)</sup> ।

सुधा । न खल्वपराध्यति भवती । अधिकारोचितमनु-  
ष्ठितं भवत्या ।

कौमु । (सगतम्) अस्म ! उज्जुअत्तणं<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । अणुगहीदा म्हि<sup>(५)</sup> ।

सुधा । मम तावद्विनयं क्षन्तुमर्हसि ।

सुन्द । का उण अहं इमस्स खमाण । पिअसही मे

(१) कः संशयः, पुण्यदर्शनः साधुः खल्वसि ! तिस्र तावत्, यावदस्य साधो-  
र्वृत्तान्तं पित्रे पुण्यकीर्तये निवेदयिष्यामि ।

(२) अहो कथं स एव महाभागः !

(३) आर्य्यं, यन्मया मूढया आर्य्ये अविनयः कृतः, तत् क्षन्तुमर्हत्यार्य्यः ।

(४) अहो ऋजुकत्वम् !

(५) अनुगृहीताऽस्मि ।



कौमर्द एदस्स घरस्स सामिणी, णं खमेदुं अरिहइ  
अज्जो<sup>(१)</sup> । (इति कौमुदीमङ्गल्या दर्शयति) ।

सुधा । (उपहृत्य) मम तावद्भवती,

अविनयं क्षमतामनुकम्पया  
प्रथममेतमनन्यगतेः कृतम् ।  
तनुभृतां शरणागतरक्षणं  
ह्युपदिशन्ति महाव्रतमक्षयम् ॥

( कौमुदी सलज्जमधोमुखी तिष्ठति ) ।

सुन्द । (वह्निखलोक्य ससम्भ्रमम्) इदो दाव कीलासारङ्गसि-  
सुत्रो अहिहुइज्जइ दुट्ठसारमेण्ण, मोएमि दाव  
णं<sup>(२)</sup> । (इति प्रस्थिता) ।

कौमु । मा निक्काम, एआइणी क्वु अहं<sup>(३)</sup> ।

( इति सिचयाच्चलमादाय वारयति ) ।

सुन्द । (सस्मितम्) कंदप्पदप्पहारी दे पुरदो चिट्ठदि<sup>(४)</sup> ।

(१) का पुनरहमस्य क्षमायाम् । प्रियसखी मे कौमुदी एतस्य गृहस्य  
स्वामिनी, एनां क्षमयितुमर्हन्त्यर्थः ।

(२) इतस्तावत् क्रीडासारङ्गशिशुकोऽभिभूयते दुष्टसारमेयेन, मोचयामि  
तावदेनम् ।

(३) मा निष्काम, एकाकिनी खल्वहम् ।

(४) कन्दर्पदर्पहारी ते पुरतस्तिष्ठति ।

कौमु । (सासूयम्) अइ को<sup>(१)</sup> ?

सुन्द । णं भअवं भआणीपई<sup>(२)</sup> ।

(इति शिवस्य चित्रपटमङ्गल्या निर्दिश्य सिचयाञ्चलमाक्षिप्य निष्क्रान्ता) ।

सुधा । (खगतम्) कुलावला खल्वेषा न किमपि वक्ष्यति, मयाऽपि मनेगतमालपता शालीनत्वाय जलाञ्जलिर्दत्तो भवेत्, इति यत् सत्यमात्मनेऽपि लज्जे । (विचिन्त्य) । भवत्वेवं तावत् । (प्रकाशम्) । अयि भीरु,

परिहर विधुमुखि, शङ्कां प्रसन्नमद्य विधुमण्डलं भवतु ।

उपरक्तोऽमृतरश्मिर्गल्पयति हि प्रकृतिसुभगोऽपि ॥

(कौमुदी तथैवास्ते) ।

सुधा । सुन्दरि, एवं चिन्ताम्बानमुखी न परमात्मानं यावदस्मानपि क्षणपरिचयप्रणयान् खेदयसि । पश्य,

क्षणमात्रप्रदृष्टाऽपि न कस्य कमलेक्षणे ।

गन्धर्व्वनगरीव त्वं बाले, हरसि मानसम् ॥

कौमु । (खगतम्) हिअअ, तह वाउलं हुविअ किं दाणिं मज्झत्यत्तणं ओलंवसि । लोअण, जं पेक्खदुं

(१) अयि कः ?

(२) ननु भगवान् भवानीपतिः ।

अदिमेत्तं उक्कंठसि, सो दे पुरदो चिद्धदि, किं  
एल्लिं ण पेक्खसि<sup>(१)</sup> ?

सुधा । अयि व्रीडिते,

नितान्तचिन्ताग्लपितन्तवेदं  
मुखं निरानन्दकरं किलेन्दोः ।  
मथ्नाति भूयो हृदयं मदीयं  
साक्षात् परिस्नानमिवारविन्दम् ॥

कौमु । (खगतम्) सर्व्वं क्वु रमणिज्जं पेक्खइ महप्पा<sup>(१)</sup> ।

सुधा । (सविषादमात्मगतम्) किं नु खल्विदम् ! (विचिन्त्य)

यद्भवति तद्भवतु, न पुनरात्मनो विज्ञापनाऽवसरं  
विफलयिष्ये । (प्रकाशम्) कल्याणि, न खल्वयं जने-  
वाङ्ममात्रेणापि न पुनः सम्भावनाऽर्हः । न खल्वा-  
त्मनः प्रभवामि, अत इदं ब्रवीमि । श्रूयतां भूतार्थः,

वेगेन प्रवलेन यस्तु हृदयं संज्ञावयत्युत्सुकं  
यश्चोन्मूलयति क्षणेन नितरामप्यात्मनः संयमम् ।  
यः खल्वन्धयते विमोहयति वा सोऽयं दशाव्यत्ययो-  
मामुच्चैरधुना करोति यदिदं वाग्भिः कथं कथ्यते ॥

(१) हृदय, तथा व्याकुलं भूत्वा किमिदानीं मध्यस्थत्वमवलम्बसे ?  
लोचन, यं प्रेक्षितुमतिमात्रमुत्कण्ठसे, स ते पुरतस्तिष्ठति, कि-  
मिदानीं न प्रेक्षसे ?

(२) सर्व्वं खलु रमणीयं प्रेक्षते महात्मा ।

कौमु । (खगतम्) किं णु क्वु एदं होज्जउ; किं अणु-  
वञ्चारसंहञ्चो मसू अञ्चं, उद जह मे मणस्स  
अहिलासो त्ति जं सच्चं इमिणा अप्फुडाक्खरेण  
वञ्चणेण वेवदि मे हिअञ्चं<sup>(१)</sup> ।

सुधा । धिक्कष्टं व्रीडितोऽस्मि । (कौमुदीं प्रति) सुतनु, वि-  
वेकमूढेण मया एवमभिहितं, न पुनरेवं श्रोष्यसि ।  
तथाप्युद्भिन्नः प्रवाहो न शक्यः सहसा नियमयि-  
तुम्, तद्गद्रमभद्रं वा भवतु, अनुग्रहेण श्रूयतां  
तावत् पश्चिमं वचः सुधारकस्य । (निःश्वस्य) ।

त्वमेका कल्याणी विधुमुखि, मनो मे प्रियतया  
विलोलं त्वय्युच्चैर्विशति परिलुप्तान्यविषयम् ।

मम त्वं न स्या वा तव तु सुकुमाराङ्गि, नितरां  
विनाऽप्यर्थोत्सर्गं कलय खलु दासोऽयमवले ॥

अविनयन्तु सुधाकरान्मा शङ्किष्ठाः । अहं हि,

वृथा मनोरथक्लिष्टस्यजेयमपि जीवितम् ।

न खल्वविनयं कुर्यां त्वयि वा दोषभावनाम् ॥

स्वस्ति भवत्यै । अनुमन्यस्व तावत्, गच्छामोऽपुनर्दर्श-  
नाय । (इति प्रस्थितः) ।

(१) किं नु खल्विदं भवेत्; किमनुपचारसम्भवो मन्युरयं, उत यथा मे  
मनसोऽभिलाषः इति यत्सत्यमनेनास्फुटाक्षरेण वचनेन वेपते मे  
हृदयम् ।



कौमु । (खगतम्) हृद्दी हृद्दी ! इमं सुणिअ ण मे धिई अत्थि,  
किं दाणिं कुणमि । होदु, अदिधिववदेसं ओलं-  
विस्सं । (प्रकाशम्) मरिसेउ मरिसेउ महाभाअो<sup>(१)</sup> ।

सुधा । (पदान्तरे प्रतिनिवृत्त्य) एषोऽस्मि ।

कौमु । समाअराणहिस्सो खमिदुं अरिहो लज्जावर-  
असो कुलकस्सआअणो । दआलुणो क्वु अदिधि-  
विसेसा हेअन्ति<sup>(२)</sup> ।

सुधा । (खगतम्) कथमतिथिधम्म मय्याअयति । (प्रकाशम्)  
मा मैवम् । आभाषणमपि ते समादरपप्पे वर्त्तते ।

कौमु । तह वि उवआरविमुही अवरडा म्हि महा-  
भाअस्स मंदभाइणी<sup>(३)</sup> ।

सुधा । सुन्दरि, अलमलमनेन । अतिमाअं खल्वह-  
मुपचरितस्त्वया । मया खलु तव,

वचनामृतमपि पीतं निर्वर्णितमाननं समाघ्रातः ।

सुरभिमनोहरगन्धो वरतनु, कोमलशरीरस्य ॥

(कौमुदी सत्रीडाऽधोमुखी तिष्ठति) ।

(१) हा धिक् हा धिक् ! इदं श्रुत्वा न मे हृतिरस्ति, किमिदानीं करोमि ।

भवतु अतिथित्यपदेशमवलम्बित्ये । मर्षयतु मर्षयतु महाभागः ।

(२) समादरानभिज्ञः क्षन्तुमर्हो लज्जापरवशः कुलकन्यकाजनः । दया-

लवः खल्वतिथिविशेषा भवन्ति ।

(३) तथाप्युपचारविमुखी अपराद्धाऽस्मि महाभागस्य मन्दभागिनी ।

(नेपथ्ये)

भोः भोः अस्मदीया लोकाः,

उपज्ञवाद्वातकृतात् परस्ता-

न्न कौमुदीं प्रेक्ष्य विहस्तितौ स्तः ।

उच्चैस्तरां तत्पितरौ, कुतः सा ?

ब्रूताधुना तिष्ठति चेन्मता वः ॥

कौमु । (आकर्ण्यात्मगतम्) हृद्दी हृद्दी, मह एव्व अस्सेसणा  
वट्टइ । हि अत्र, अलीअलज्जिअ, किं दाणिं परि-  
तप्पसि ? सहसु लज्जादुव्विणअं<sup>(१)</sup> ।

(ततः प्रविशति सम्भ्रान्ता सुन्दरी)

सुन्द । हला कोमइ, एहि गच्छामो, अज्जो हारि-  
अत्रो तुमं मग्गेअन्तो इदो ज्जेव्व आगच्छदि,  
विस्सवेहि दाव महाभाअं, उक्कंठिआ पिअर<sup>(२)</sup> ।

(कौमुदी विषम्या तूष्णीमास्ते) ।

सुन्द । महाभाअ, कोमई विस्सवेदि ; इच्छामि महा-  
भाएण अब्भणुस्सादा पिअरे पेक्खिदुं ति<sup>(३)</sup> ।

(१) हा धिक् हा धिक् ! ममैवान्वेषणा वर्त्तते । हृदय, अलीकलज्जित,  
किमिदानीं परितप्यसे ? सहस्र लज्जादुर्विनयम् ।

(२) अयि कौमुदि, एहि गच्छावः, आर्या हारितकस्त्रां मार्गयन्नित-  
एवागच्छति । विज्ञापय तावन्महाभागं, उत्कण्ठितौ पितरौ ।

(३) महाभाग, कौमुदी विज्ञापयति इच्छामि महाभागेनाभ्यनुज्ञाता  
पितरौ प्रेक्षितुमिति ।

(इति ब्रुवत्येव सुधाकरमवलोकयन्तीं कौमुदीमादाय निष्क्रान्ता ।)

सुधा । (निःश्वस्य) गतं लोचनमधु । तत् किमत्र करोमि  
मन्दभाग्यः । (विभाव्य) अहो सन्देहाकुला कामिजन-  
मनोवृत्तिः ।

मम हि,

विलोक्य चिह्नान्यपि नानुरागं  
प्रत्येति चित्तं मृगलोचनायाः ।  
न्याघैरिवार्थं स्वयमभ्युपेतम्  
आभासशून्यैरपि तन्त्रवाचः ॥

अपिच,

संवादवशात्लोकः प्रत्येति स्वयमवधृतभृतार्थम् ।

मम खलु मनसस्तर्कः शिथिलस्तस्याः स्फुटोक्तिविरहेण ॥

यावद्दिमं वृत्तान्तं वयस्यसालङ्कायनं विज्ञापयिष्ये ।

स वा किं मन्यते । (परिक्रामन् साशंसम्)

आशंसापरिकल्पितेऽपिच मनो यत्रामृतैः स्नायते  
यल्लोभात् किल पूर्वदेवनिवहैः पीयूषमप्युज्झितम् ।  
तन्मृगधेक्षणलक्षणं स्मितकथं भावार्द्रचेष्टोत्तरं  
स्वर्गादप्यभिराममेणनयनाप्रेमास्तु नित्यं मयि ॥  
(इति निष्क्रान्तः) ।

इति कौमुदीसुधाकरे द्वितीयोऽङ्कः ॥

## तृतीयोऽङ्कः ।



(ततः प्रविशति भीषणवेशोज्ज्वला कङ्कालमालिनी ।

कङ्का । वलमिति खलु पाशं चां वदन्ति प्रवीणाः

परमपुरुषतत्त्वं या तिरोधत्तएव ।

पशुकुलमनुगृह्य प्राज्यरूपा शिवा नो-

वितरतु शिवमेषा रोधशक्तिः शिवस्य ॥

अपिच,

पद्मेऽधोविलसत्सहस्रदलके कर्पूरगौरोज्ज्वले

यो राजत्यनुशक्ति मुक्तमधुरश्चक्रे द्विषट्के तथा ।

भित्त्वा तानि सरोरूहाणि च महाचक्रे परस्मिन् पुनः

सोऽयं पाशविमोक्षणेन परमोदेवः शिवत्वं क्रियात् ॥

अपिच,

स्वतन्त्रो यस्तावत् सकलकरणानामविरतं

प्रथोक्ता कर्मादि प्रभुरपि सदाऽपेक्षतद्गृह ।

स्वयं कर्त्ता साक्षात् स खलु परिशुद्धाध्वविषयेऽ-

हिते मार्गेऽनन्तादिभिरिति विभोः कोऽपि महिमा ॥

(गतानुगतिकान् लोकानवलोक्य)

अहो पशूनां मतिवैपरीत्यम् ! प्रायेण विषयानैव सेव-  
मानाः केचित् पुनर्दुराचार्य्यचातुर्य्यवञ्चितत्वा-



दनादृतमाहेश्वरसिद्धान्ताः क्लिश्यन्ते । एतेषु किल,

सकलाः प्रायशो लोका ये केचित् प्रलयाकलाः ।

तेऽपि पुर्यष्टकैः कष्टं संसरन्ति पुनः पुनः ॥

कालेन भगवान् पशुपतिरेव अबोधविक्रवेभ्यः  
स्वस्ति करिष्यति । (विचिन्त्य सविस्मयम्) अहो प्रभा-  
वातिशयोऽस्मद्गुरोः कापालिककुलभूषणस्य भग-  
वतः खण्डमुण्डस्य । यदत्रभवतः कृपयैव असम्यग्-  
योगचर्य्याऽपि मया कतिपयैरेव दिवसैः समासा-  
दिता खेचरी सिद्धिः । (विम्वश्य) गुरुर्हि नाम भगवतः  
पशुपतेरेव मूर्त्यन्तरम् ।

तथाहि,

परिपक्वमलानणून् भवाञ्छेः

स्वयमुद्धर्त्तुमनाः पतिः पशूनाम् ।

गुरुमूर्त्तिगतो दिशत्यमोघं

करुणावारिनिधिः शिवत्ववीजम् ॥

सर्व्वथा नमः शिष्यजनकल्पतरुभ्यो दुर्गतशरणेभ्यो-  
ऽस्मद्गुरुचरणेभ्यः । (इति प्रणमति) ।

(क्षणं विभाव्य) गुरुदक्षिणार्थमुपच्छन्दितेन गुरुणा कि-  
लैवमादिष्टाऽस्मि ; शरावतीपुरनिवासिनः पुण्यकीर्त्ते

स्तनयां कौमुदीं सुन्दरीद्वितीयामपहृत्य तुङ्गपर्वतं  
नीत्वा संयम्य रक्षस्व, ततो मया अमावस्यायां तत्र  
गत्वा अनन्तरकरणीयं करिष्यते,—इति । सा खलु  
कौमुदी सर्व्वलक्षणोपेता कुमारीत्यस्मद्गुरोर्मन्त्र-  
सिद्धये चामुण्डोपहारो भविष्यति । सुन्दर्य्यपि तप-  
स्विनी गुरुं प्रतिकूलयमाना चामुण्डोपहारतामेव  
प्रतिपन्ना । अपिचैतयोः करणात् सालङ्कायनेन  
बटुना असकृदधिष्णिता गुरवः, अचिरनिवृत्ता-  
याञ्च परिव्राजकानां संसदि महान्तं परिभावं  
प्रापिताः । तन्मयाऽप्यवश्यं गुरूणां प्रियकार्य्यमनु-  
ष्ठास्यते । श्रूयते च, शङ्करया प्रोत्साहितः पुण्यकी-  
र्त्तिर्नातिचिरात् सुधाकराय कौमुदीं दास्यति,—  
इति । (स्रुत्वा) अद्य किल चतुर्दशी । तदुपस्थितः  
कार्य्यकालोऽस्माकम् ।

(नेपथ्ये गीयते) ।

ओसिअणिअमिअकज्जो जत्ताज्जतो महेस्सरो सिरिमा ।

पेक्कह सुहिअो लोअा परलोअं तरह वीअभया<sup>(१)</sup> ॥

कङ्का । (कर्णं दत्त्वा) अये! इयं भगवतः खण्डपरशोर्याचा-

(१) अवसितनियमितकार्य्या यात्राऽभिमुखो महेश्वरः श्रीमान् ।

पश्यत सुधियो लोकाः परलोकं तरत वीतभयाः ॥

प्रवृत्तलोकानां प्रावेशिकी ध्रुवा । (विमृश्य) अमुन-  
 वावसरेण गुर्वादेशकरणेनात्मानं कृतार्थीकरिष्ये ।  
 (इति परिक्रामति । अग्रतोऽवलोक्य) कः पुनरयमितरवा-  
 गच्छति ? (पुनरवलोक्य अनिरूपणं नाटयन्ती) एष खलु दूरा-  
 दनालक्ष्यव्यक्तिः । (विभाव्य सावज्ञम्) भवतु किमनेन,  
 गुर्वादेशमिदानीमनुतिष्ठामि । (इति परिक्रम्यान्यतो-  
 निष्क्रान्ता) ।

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति सुधाकरः) ।

सुधा । उपदिष्टोऽस्मि भगवत्या शङ्करया ; अद्य किल  
 कस्याप्यमङ्गलस्य प्रतिहतये तुङ्गपर्वतं गच्छता त्वया  
 यापयितव्योदिवसः,—इति । (विचिन्त्य निःश्वस्य) पापः  
 किल खण्डमुण्डो न मे कौमुदीलाभं सहते । (विभाव्य)  
 अहो परसौभाग्यसन्तप्यमानानां पौरोभाग्यं  
 दुर्जनानाम् ।

तथाहि,

रोदस्योरन्तरालं ज्वलयति तरणौ द्रष्टुमस्योज्ज्वलत्वं  
 नालं लेशादुलूकः शतशद्व पुनर्दीर्यते चक्षुरस्य ।  
 पीयूषप्रायमुच्चैर्मदयति हृदयं ज्योतिरिन्दोर्जनानां  
 तत्संपश्यन् मृगाङ्गोमणिरपि नितरां रोदिति प्राप्तदैव्यः ॥

अथवा, स्निह्यति खलु शिष्यायेव मद्ध्यं भगवती  
परिव्राजिका, सर्वथा सैव नः स्वस्ति करिष्यति । यतः,

मूर्त्तद्वय पापराशिर्विजृम्भते तावदन्धकारोऽयम् ।

यावन्नोदेति शुभा जगत्युषाऽऽलोकसर्व्वस्वम् ॥

अपिच,

सौदामन्यां ज्वलन्त्यां न खलु परिभवत्यध्वगव्रातचक्षुः

कामं घोरान्धकारो जलधरपटलैरप्यकाण्डे प्रवृद्धः ।

दूरादालोक्यते यः सकलजनगणैः सोऽपि वङ्गिर्न तावत्

ज्वालामालाऽवलीढः प्रतपति तपने ज्योतिराविष्करोति ॥

(विचिन्त्य) कैव शक्तिः कापालिकापसदस्य भगवती-  
महिमानमतिशयितुम् । कुतः ?

अत्यन्ततोऽपि सन्नद्धो भूयानपि बलाहकः ।

महत्या जातु वात्याया वेगमत्येतुमक्षमः ॥

तत् अलमस्य दुष्टकापालिकस्य कथया मनसः खेद-  
मुत्पाद्य । (अवलोक्य) कथमेते वयमुपत्यकां भूमिं सम्पा-

प्ताः ! चिन्ताऽऽकुलत्वात्तु मनसो न पुनरुपलक्षितम् ।

(निरूप्य) अहो रामणीयकमुपत्यकायाः ।

तथाहि,

इतः कुञ्जं गुञ्जद्विलसदलिपुञ्जं विकसितै-

रितोद्याप्तं मुक्ताफलवलयशोभैर्विटपिभिः ।



इतः शस्यश्यामा स्थलकमलजालैरुपचिता

स्थली ताराव्रातैरिव रजनिरालक्ष्यतइह ॥

(मेघगर्जितं सूचयित्वा) एष स्तनयित्नुनिर्घोषः शिलोच्चय-  
विजृम्भितप्रतिशब्दमांसलो भूयसीं वृद्धिमुपगतः ।

(सस्मितम्) तदेतदुच्चैःशिरसां सन्निकर्षमाहात्म्यम् !

(अग्रतोऽवलोक्य, सविस्मयम्) किन्तु खल्वेतत् ? (विचिन्त्य) आं  
ज्ञातम् । मेघशब्दात् रत्नशलाकाः समुद्भिन्नाः । मन्ये  
च रत्नशलाकाच्छलेन,

एषा विदूरभूमिर्घनस्य शब्देन चाटुकारस्य ।

मधुरं रसमिच्छन्ती सुग्धा पुलकोद्गमं वहति ॥

(अन्यतोऽवलोक्य) रमणीयं खल्वितोवर्तते !

भूयः पक्कमरौचराशयदमे श्यामस्थलौसङ्गताः

लक्ष्यन्ते शुक्लचञ्चुसोदररुचः सान्द्रेन्द्रगोपाइव ।

(अपरतोऽट्ट्वा) चित्रमितोभ्रमराणां रञ्चनाप्रकारः !

गन्धैरन्धतया विवेकविधुराः सर्पङ्गिरुच्चैर्दिशो-

यातथेषु जडा विमूढमनसो भ्राम्यन्ति मृङ्गाश्रमी ॥

(पुनरन्यतोऽवलोक्य) अयमितस्तपोवनाभोगः । तथा-

ह्यत्र,

नीवाराणां वलिभिरधिकप्रेक्षणीया स्थलीयं

स्तोकोन्नेया मलिनरुचयः पक्षवा होमधूमैः ।

लुप्तातङ्गैर्द्विगृहकमुखैरालवालीयमम्भः

सत्वैस्तत्त्वं मुनिभिरिव सम्प्रीयते प्रत्ययेन ॥

अपिच ।

प्रत्यग्रवल्कलस्यन्दिकषायरसविन्दुभिः ।

अलङ्कृता स्थली भाति ताराभिर्द्यौरिवाचिता ॥

(अनिलस्पर्शमाघ्राणञ्च रूपयित्वा) अहो पवित्रता तपोवनस्य ।

हृद्यगन्धशुचिभिः समीरणैः

केवलं न खलु मे कलेवरम् ॥

आन्तरोऽपि पुरुषोमलात्यया-

न्नूनमेष लघिमानमश्रुते ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) अयमारात्तुङ्गपर्वतः । यएषः,

सत्वानां रचितोच्चैर्विनयनयजुषान्तापसैरिष्यमाणो-

मुक्ताजालैरनल्पैर्वज्रलमणिमयैः क्लृप्तनेपथ्यशोभः ।

उच्चैर्मूर्द्धा समारो गुरुतरधरणीभारवोढा विषोढा

साक्षाद्गाढाक्रमानामवनिपतिरिव प्रोज्ज्वलस्तेजसैव ॥

(निरूप्य) अहोदर्शनीयता इतः शिलोच्चयस्य ।

प्रांशुर्नव्यक्तसन्धिर्मरकतरुचिरो निर्झरोद्गाररभ्यः

कस्त्ररीलिप्तदेहो नृपतिरिव लसद्भ्रौतवस्त्रोत्तरीयः ।

व्यालम्बालोलहारो बुधइव गगनं थोमगङ्गाम्भसेव

स्कन्धासक्तं मृणालं गजइव विपुलं विभ्रदभ्रंलिहोऽयम् ॥

(इतिपरिक्रामति) अयं तुङ्गपर्वतः । यावदधिरोहामि ।

(इति नाद्येनाधिरोहति)। (अधस्तादवलोक्य) अन्यैवास्मात् स्था-  
नात् प्रेक्षणीयता जीवलोकस्य ।

सूक्ष्मं कापि विलीनमल्पमभवत् स्थूलं मुञ्जश्चञ्चलं  
संप्राप्तं स्थिरतामतीव नितरामायामवत् खर्वताम् ।  
प्राचोहन्त समस्तवस्तुविषया भिन्नेव जाता स्थिति-  
लोकानामनवस्थितां स्फुटयति व्यक्तं महत्संश्रयः ॥

(परिक्रम्यावलोक्य च) किं नु खल्वेतदल्पमपि परिमाणत-  
उपचीयमानमिव स्निग्धमधुरकमनीयेन रोचिषा  
वालद्वव कुमुदबन्धुरानन्दयति मे हृदयम्? (निरूप्य)  
अये मुद्रिकेयम्! (सवितर्कम्) कुतः पुनरस्मिन् तपस्वि-  
जननिवासयोग्ये प्रदेशे सम्भवेऽस्य नरपतिकुला-  
न्वेषणीयस्य रत्नस्य? (विमृश्य) अथवा । देवभूमयः  
खल्वेवमादयः प्रदेशाः । तत्सर्वमुपपन्नम् । नूनम-  
लौकिकेनानेन रत्नेन भवितव्यम् । (क्षणं तूष्णीं स्थित्वा)  
भवतु, किमनेन । न खल्वनात्मीयं वस्तु अस्मद्विधैर्ग्र-  
हणमर्हति । (इति प्रस्थितः) ।

(नेपथ्ये) ।

मनोरथानामुपपादयित्री  
महातपःसिद्धिरिवाचिरेण ।  
प्रगृह्यतां मङ्गलमुद्रिकेय-  
मुपस्थिता दैववशादमोघा ॥

सुधा । (आकर्ण्य) कः पुनरयममृतमयेन वचसा बन्धुरिव  
 मङ्गलमस्मदीयमभिलिपसुर्मुद्राग्रहणाय मामनु-  
 शास्ति ? (विभाव्य) नूनमनेन केनापि देवयोनिना  
 भवितव्यम् । भवतु, गृह्णामि । (इति ग्रहणं नाटयति) ।  
 (दिशोऽवलोक्य) रमणीयः खल्वयं शैलः ।

दरी विपुलितान्तरा जलदखण्डरुद्धा मुखे  
 वनेचरवधूजनः सहजचारुभावोज्वलः ।  
 महौषधिमयी स्थली प्रचुरकीचकानां रवः  
 सगैरिकमनःशिलाच्छुरितरम्यरत्नोपलः ॥

यत्सत्यं हतइवास्मि संवृत्तो महीध्रसुषमाभिः ।  
 तथाहि,

यदृच्छातश्चक्षुर्विनिपतति यत्रैव विषये  
 स एवावध्नाति प्रथममिव दृष्टः पुनरपि ।  
 शरच्चन्द्रं लोकोमुज्जरपिच पश्यन्न भवति  
 प्रहृष्टो वस्त्रनां प्रकृतिमधुराणां स्थितिरियम् ॥

(इति परिक्रामति) ।

(सवितर्कम्) कथमीदृशेऽपि रमणीये प्रदेशे उत्कण्ठा-  
 भूयिष्ठो ममान्तरात्मा नीहारनिमग्नइव चन्द्रमा न  
 प्रसीदति ? (इति चिन्तां नाटयति) ।

(नेपथ्ये गीयते) ।

रमणीयोऽप्युपचारो ग्लपयति हृदयं वियोगविधुराणाम् ।



वर्षति चामृतमिन्दौ ग्लायति तावद्दिवाकरग्रावा ॥

सुधा । (कण्ठे दत्त्वा) अये किम्पुरुषाणामियं गीतिः । (विभाव्य)  
 अवितथमेव गीतं तुरङ्गमुखैः । कौमुदीविरहएव  
 मनेामे विधुरयति । (सविषादम्) अनुपक्रम्योऽयमातङ्कः ।  
 केवलं सैव वरोरुच प्रभवति, सप्रतिबन्धश्चायमर्थः ।  
 सर्वथा धिग्भागधेयमस्माकम् । (निःश्वस्य) प्ररूढो-  
 ऽप्ययमर्थो न पुनरभिव्यक्तः । तथाहि,

अधिचकार सुधांशुमुखी मनः  
 स्फुरति च द्युनिशं हृदयान्तरे ।  
 सुनिपुणैर्मतिमद्भिरगादथो  
 तडिदिवैकरसैरनुमेयताम् ॥

(विचिन्त्य) अपूर्वः खलु प्रकारः प्रहरतो मकरके-  
 तनस्य । यतः,

अस्त्रं धनुः पुष्यमयं गुणोऽपि  
 भृङ्गावली चारुसखोवसन्तः ।  
 निमित्तमेणीनयनाभिरामा  
 रामाऽचिरात् प्राणभृतः शरव्यम् ॥

स्थाने खलु सर्वेषां धनुष्मतां प्रत्यादेशश्चमो महिमा  
 मनोजन्मनः । यदसौ तर्जितप्रलयकालकेतुविकट-

भ्रुकुटीकरालमुखस्य भगवतो धूर्जटेर्ललाटलोचन-  
सम्भवज्वलनभस्मीकृतोऽपि,

मृदुलमृदुलपत्रः केवलं पुष्पधन्वा  
सुरनरदनुजादिं त्रिष्वहो पिष्टपेषु ।  
युगपदकृतलक्ष्यः कामिलोकं क्षणेन  
प्रतिहतपरिपन्थी पञ्चवाणः क्षिणोति ॥

(विभाष्य) अपिनामैवमप्युपतप्य कदाचिदमुनैवो-  
पायेन सुखयेदस्मान् कुसुमायुधः ?

(सप्रत्याशम्)

सन्तप्यान्ते मुञ्जरपि विधिर्भूयसा मङ्गलेन  
निःसन्दिग्धं सुखयति पुनः किन्तु कालेऽनुकूलः ।  
दग्ध्वा ग्रीशे ज्वलनकणिकानिर्विशेषैर्मयूखैः  
प्रावृष्यद्भिः प्रचुरमरुणोजीवलोकं धिणोति ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) अये अन्तरा वनधारं लतामण्डपद्वव  
दृश्यते । (भूयः परिक्रम्य निरूप्य च) कथं सत्यमेव लता-  
मण्डपः ! पल्लवभूयिष्ठानां विटपिनां निविडतरैः  
सन्निवेशैरन्धकारितद्ववायं प्रदेशः । यावदुपसर्पामि ।  
(इति परिक्रामति) ।

(ततः प्रविशति लतामण्डपमध्यगता लतापाशसंयमितकरचरणा  
मूर्च्छिता कौमुदी) ।

सुधा । (उपसृत्यावलोक्य सास्वर्यम्) अये नूनमियं विद्याधर-

दारिका सुखस्वप्नमनुभवति । (निरूप्य सविस्मयम्) कथ-  
मियं संयमितकरचरणा ! अहह !

अज्ञानमालतीमालां निर्मलामोदनिर्भराम् ।

सन्तर्पणकरीमच्छणोरमृद्रात् कोनु दुर्मतिः ? ॥

(सवितर्कम्) अपिनाम असुरस्य निशाचरस्य वा कस्य-  
चित् नैष्ठुर्यविलसितमेतत्स्यात् ? (विभाव्य) अथवा,  
कः सन्देहः ।

लालनीयां सहस्रांशोः करैरादरकोमलैः ।

कोऽन्यः कमलिनीं हन्यादृते मत्तमतङ्गजात् ॥

मोचयामि तावदेनाम् । असाम्प्रतं खल्वापन्नं जनमु-  
पेक्ष्य गन्तुम् । (नाद्येन प्रविश्यावलोक्य ससम्भ्रमम्) कथमियं  
मर्च्छिता ! यावदुपचरामि । (इति नाद्येन मोचयित्वा वीज-  
नादिनोपचरति) । (सोत्सुकमात्मगतम्)

विद्याधराणां ध्रुवमन्ववाया-

दिदं मनोहारि वभूव रूपम् ।

स्निग्धं प्रभामण्डलमिन्दुविम्बा-

दाप्यायनं न स्फुरतीतरस्मात् ॥

अपिच,

शैलादेव प्रगुणितजलाः सम्भवन्तीह नद्यो-

मुक्तारत्नं सरिदधिपतेस्ताम्रपर्णीषमेतात् ।

ओषध्योऽपि ज्वलितसुभगस्निग्धभासो हिमाद्रौ

कादम्बिन्यां लसति चपला व्योम्नि ताराः स्फुरन्ति ॥

(सखेदम्) महता खल्वत्रभवती मोहेन कवलिता ।  
इयं हि,

निष्पन्दसर्व्वकरणा वपुषा सुकुमारकान्तिमा भाति ।

जीवन्यासात् पूर्वं नारायणसम्भवा वरोरुरिव ॥

(निरूप्य) अहो कष्टम्! कथं वेपते! न पुनरुपलक्षितं  
मया ।

पथोधरप्रकम्पोऽस्या नाधुनाऽप्युपशाम्यति ।

शान्तेऽप्यत्याहिते भाति लोकस्य भयवेपथुः ॥

अकथितमपि ज्ञायतएवात्रभवत्या महदत्याहितम् ।  
तथाहि,

न विद्यते यद्यपि चेतनाऽस्या-

स्तथापि गाढो वपुषः प्रकम्पः ।

उपप्लवं सूचयति प्रकामं

साक्षादिवान्तर्वलवन्तमुर्व्व्याः ॥

(विभाष्य) अहो सौकुमार्य्यम्!

इयं पराभिषङ्गेन मथिताऽपि कृशोदरी ।

स्नाना न लक्ष्यते दिव्या मालेवातपतापिता ॥

अपिच,

चित्रं काचैरपिहितमिव ज्योतिषा रात्रिवन्धो-

रष्याच्छन्नं सरसिजमिव ग्रस्तवच्चन्द्रबिम्बम् ।



अस्या रूपं हरति हि मनोमुग्धमप्युत्पलाच्याः

कैवावस्था प्रकृतिमधुरं वस्तु नालङ्करोति ॥

(इति सस्पृहमीक्षते) । (समीक्ष्य सवितर्कम्) कथमियं दृष्टपूर्व-  
वाभाति । प्रावृतत्वात्तु प्रदेशस्य न पुनः सम्यगुपल-  
क्षयामि । निरूपयामि तावत् । (निपुणं निरूप्य) कथं  
कौमुदी ! (इति मूर्च्छति) । (क्षणान्तरे संज्ञां लब्ध्वा) धिक्कष्टम् !  
नूनं तस्यैव कापालिकापसदस्य क्रौर्यमिदं विजृम्भते ।  
(इति सोद्वेगमुपचरति) ।

(कौमुदी प्रत्यागच्छति ।

सुधा । (विलोक्य सहर्षमात्मगतम्) दिष्ट्या वर्द्धामहे !

धूमस्थान्ते शिखाऽग्नेरिव विमलतरा स्वैरमाविर्भवन्ती  
मेघैरारिच्यमाना स्फुरदमलरुचिश्चन्द्रिकेव प्रसन्ना ।  
कुम्भोद्भूतोदयान्ते सरिदिव कलुषा प्राप्तकल्पा प्रसादं  
मोहेनान्तर्वरोरुर्ध्रुवमियमधुना मुच्यमानत्वमेति ॥

कथं घनान्धकारितायां रात्रौ शातहृदमिव ज्योति-  
रस्मिन् गिरिकान्तारे वाङ्मनसयोराल्लादनं रत्न-  
मुपलब्धम् !

(कौमुदी लब्धसंज्ञां चासं रूपयति) ।

सुधा । महाभागे, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अलं भिया भीरु ! परो न विद्यते  
पुरः स्थितो दासजनोऽयमस्ति ते ।

ततः परित्यज्य पराभिषङ्गं  
भयं समुन्मीलय नेत्रपङ्कजम् ॥

कौमु । (कण्ठस्वरेण सुधाकरं प्रत्यभिज्ञाय सहर्षमात्मागतम्) अम्म !  
कथं सोएव महाभाओ, उवकिदं क्वु मे हदासाए ।  
जं सच्चं मेहमालान्तरिओ वि दिणअरो पआसेइ  
लोअं । किं एत्य करणिज्जं त्ति ण क्वु अहिगच्छामि ।  
(विचिन्त्य) होदु एव्वं दाव । (उन्मील्य चक्षुषी) ण क्वु  
सम्मउवलक्खेमि, किणाउण आवणाणुकम्पिणा  
पिअंवदेण महाभाएणव्भुववणा ण्हि<sup>(१)</sup> ।

सुधा । महाभागे, ज्ञास्यसि । प्रकृतिं तावत्प्रतिपद्यस्व ।  
वलवत् खलु परिचस्ताऽसि । तव हि,

मुक्तमपि प्रलयेन प्रकृतिं नापद्यते करणमेतत् ।

झञ्झावात्याऽपाये तोयमिवोदेलितं नद्याः ॥

(कौमुदी तूष्णीमास्ते) ।

सुधा । अपि प्रकृतिमापन्ना ते तनुः ?

कौमु । आं अत्यि कच्चि विसेसो<sup>(२)</sup> ।

(१) अम्म ! कथं सएव महाभागः । उपकृतं खलु मे हताशया । यत् सत्यं  
मेघमालान्तरिवोऽपि दिनकरः प्रकाशयति लोकम् । किमत्र कर-  
णीयमिति न खल्वधिगच्छामि । भवत्वेवं तावत् । न खलु सम्यगुप-  
लक्षयामि, केन पुनरापन्नानुकम्पिना प्रियंवदेन महाभागेनाभ्यप-  
पन्नाऽस्मि ?

(२) आं अस्ति कश्चिद्विशेषः ।

(कौमुदी सस्पृहं सुधाकरमीक्षते) ।

सुधा । (सहर्षमात्मगतम्) हृदय, समाश्वसिहि । इयं हि,

कलुषाऽप्यभिषङ्गेण मया नूनं प्रसौदति ।

तमसा परिपृक्ताऽपि शर्व्वरीवोदितेन्दुना ॥

(प्रकाशम्) कल्याणि, उत्तिष्ठ तावत् । क्लिश्यते खल्व-  
स्यामनास्तृतायां भूमौ शयानं कुसुमसुकुमारन्ते  
शरीरम् ।

कौमु । नाहं शक्ता<sup>(१)</sup> ।

सुधा । अलं विषादेन । नन्वयमेव दासजनस्ते परिजन-

भूमौ वर्त्तते ।

(इति कौमुदीं हृत्ते गृहीत्वोत्थाप्य स्पर्शसुखं रूपयन् सहर्ष-  
मात्मगतम्) ।

दयमानन्दनिस्त्यन्दमकरन्दमयी तनुः ।

निर्वृतं स्पर्शमात्रेण यस्या बाह्यमिवान्तरम् ॥

कौमु । (प्रत्यभिज्ञां रूपयित्वा लज्जां नाटयन्ती) कथं उण महा-

भात्रो अमुं अगमं पदेशं आत्रदे? सात्रदं

महाभात्रस्त<sup>(२)</sup> ?

सुधा । स्वागतमिदानों संवृत्तम् ।

(१) नाहं शक्ता ।

(२) कथं पुनर्महाभागोऽसुमगम्यं प्रदेशं आगतः? स्वागतं महाभागस्य ?

विलोकनेनैव मुखाम्बुजस्य ते  
 कृतार्थमात्मानमवैत्ययं जनः ।  
 चिराभिलाषैः किमुतोपचारकै-  
 रहोवतास्मत्सुकृतैर्विजृम्भितम् ॥

कौमु । (सत्रीङ्मात्मगतम्) अमित्रं क्वु दे वअणं । (सस्मितम्)

अधत्रा, सुहाअरादो किं अवरं सुहार<sup>(१)</sup> ?

सुधा । कथय, कोऽयमनार्यः, यस्त्वय्यपि कुसुमसुकु-  
 मारायां न दयते ?

कौमु । पकिदित्या कहेस्सं<sup>(२)</sup> ।

सुधा । तेन हि रमणीयतरं प्रदेशं गच्छावः । यत्र  
 नातिचिरात् प्रकृतिं प्रतिपत्स्यसे । (इति हस्ते गृहीत्वा  
 परिक्रामति) ।

कौमु । (स्पर्शसुखं रूपयन्ती स्वगतम्) हिअअ, किं दाणिं पि  
 तम्मसि ? (प्रकाशम्) महाभाअ, अलाहि परिस्समेण,  
 सक्का क्वु अहं परिक्कमिदुं । ता मुंचदु मे पाणिं  
 महाभाओ<sup>(३)</sup> ।

(१) अमृतं खलु ते वचनम् । अथवा, सुधाकरात् किमपरं सुधायाः ?

(२) प्रकृतिस्था कथयिष्यामि ।

(३) हृदय, किमिदानीमपि ताम्यसि । महाभाग, अलं परिअमेण, शक्त्वा  
 खल्वहं परिक्रामितुं, तन्मुञ्चतु मे पाणिं महाभागः ।



सुधा । अयि भीरु, अलमलं प्रश्रयेण । निःसहाऽसि  
जाता । तद्दहमेव नयामि ।

(सस्मितम्) अपिच,

यस्य पाणेर्यहः सुभ्रु, चिन्तितोऽपि सुखावहः ।

दैवादृहीतएवाद्य स पाणिर्मुच्यतां कथम् ? ॥

(कौमुदी सहर्षत्रीडौत्सुक्यसाध्वसा अधोमुखी निर्बुधना भवति) ।

सुधा । (स्वगतम्) न खल्वनेन परिहासेन परिकुपिता तच्च-  
भवती ? (प्रकाशम्) सुन्दरि,

यद्यनेनोपचारेण मन्यसे मद्भ्रुतिक्रमम् ।

क्षम्यतां प्रथमोऽयन्तदपराधः क्लेशोदरि ॥

(इति कौमुदीमीक्षते) ।

कौमु । (सृष्टिमभिनीय सविषादम्) तुवरदु तुवरदु महा-  
भात्रो । पित्रसही मे सुन्दरी अवि मह एव्व अव-  
त्थां पावित्रा, ए जाणामि कहिं चिद्धदि जीअदि  
वा ए वा त्ति । जं सच्चं दरोअदि विअ मे हिअअं ।  
विस्मरिअं आसि क्वु एदं मए मन्दभाइणीए ।  
दाणिं महाभाअस्स वअणेण पडिबुद्धा म्हि<sup>(१)</sup> ।

(१) त्वरतां त्वरतां महाभागः । प्रियसखी मे सुन्दर्यपि ममैवावस्थां प्रापिता । न जानामि कुत्र तिष्ठति जीवति वा न वेति, यत्सत्यं दीर्यते इव मे हृदयम् । विस्मृतमासीत् खल्वेतन्मया मन्दभागिन्या । इदानीं महाभागस्य वचनेन प्रतिबुद्धाऽस्मि ।

सुधा । अलमात्मानं खेदयित्वा । हृदयं मे कथयति  
जीवत्यायुष्मती । तदचिरेणैव द्रक्ष्यसि प्रियवयस्याम् ।  
न पुनरस्मिन् विघ्नसंकुले प्रदेशे त्वामुत्सृज्य गन्तु-  
मुत्सहे । एहि निष्प्रत्यूहं प्रदेशं तावद्गच्छावः ।

कौमु । जधा दे रोअदि<sup>(१)</sup> ।

(इति यथासम्भवं त्वरितं परिक्रामतः) ।

सुधा । (स्वगतम्) नूनमियं हर्षविषादयोरन्तरा वर्त्तते ।  
तथाहि,

विकसितमिव पद्मं शैवलाश्लेषदिग्धं  
घनलवपरिविद्धं पूर्णबिम्बं यथेन्दोः ।  
जलदपवनभिन्नो निर्मलो दर्पणो वा  
मलिनमपि मृगाच्या वक्त्रमेतत् प्रसन्नम् ॥

अपिच,

स्नानकान्तिरपि वामलोचना  
सप्रसादवदनैव लक्ष्यते ।  
श्यामलेव नलिनी प्रफुल्लिता  
बालभानुकिरणा घनान्तरात् ॥

(दृष्ट्वा) कथं रोदिति ! हन्त, रोदनमपि प्रेक्षणीय-  
मस्याः ।

एषा हर्षविषादाभ्यां व्याप्ता युगपदङ्गना ।

वर्षातपाभ्यां संभिन्ना पूर्वमन्ध्येव लक्ष्यते ॥

भवत्वन्यतः सञ्चारयामि । (प्रकाशम्) सुन्दरि, पश्य  
पश्य, एष हरिणशिशुर्नष्टां मातरमन्विष्यन् कातरेण  
चक्षुषा दिशोऽवलोकयति । अयमितश्चित्रपतञ्जी  
तिरस्कृतशिल्पकौशलो निसर्गचारुतया नयन-  
मनोहरः कलेन ध्वनिना त्वां सम्भावयति । अयञ्च  
निर्झरोद्गारः क्षणमात्रोपलभैर्मुक्ताफलस्थूलैस्तुषार-  
जालैर्भूधरमलङ्करोति । (परिक्रम्य) इतस्तावत् प्रेक्षस्व,

विटपिनममुं लतेयं कोमलकिसलयकरेण परिरभ्य ।

नयनमनांसि स्थाने बध्नाति मनस्विनां भूयः ॥

(कौमुदी सत्रीडाऽधोमुखी भवति) ।

सुधा । (स्वगतम्) एवमियमतिव्रीडाकातरा । कथमि-  
मामाश्वासयामि ?

कौमु । (परिक्रम्य गमनवाधां रूपयन्ती) हृद्धी हृद्धी, कथं  
कुसुमैर्कण्टकैर्दुःखा इन्द्रं उग्घादिनी भूमीन्ना, पलि-  
कवदा मे चलणा<sup>(१)</sup> ।

सुधा । कोमलाङ्गि, एवं यदात्य । निःसहाऽसि जाता ।

(१) हा धिक् हा धिक् ! कथं कुसुमैर्कण्टकैर्दुःखादिनी भूमिः,  
परिचरतौ मे चरणौ ।

न खलु शक्ता त्वं परिक्रमितुम् । यद्यनुमन्यसे,  
अहमेव त्वामभिमतं देशं प्रापयामि । महत् खलु  
भोगसाधनं विशेषतस्तु सकललोकलोचनमधु तवेदं  
शरीरं सर्वथैव रक्षणीयम् ।

(कौमुदी सत्रीडाऽधोमुखी तिष्ठति) ।

सुधा । मुग्धे, अलमन्यथा सम्भाव्य । याच्यमानानां  
रुचयः खल्वनुरुध्यन्ते प्रणयिभिः ।

कौमु । ण क्व ण क्व माणणिज्जेसुं जणेसुं अप्पाणं  
अवराहिणं करिस्सं<sup>(१)</sup> ।

सुधा । नास्त्यनेनापराधः ।

कौमु । किणा उण ?<sup>(२)</sup>

सुधा । मृणालसुकुमारमिदमङ्गमायास्य अस्मन्मनसः  
खेदोत्पादनेन ।

कौमु । (सत्रीडम्) णं माणणिज्जो भवा<sup>(३)</sup> ।

सुधा । सुन्दरि, यद्येवं, माननीयानां रुचयो न प्रति  
हन्तव्याः ।

कौमु । णत्थि मे अदो परं वाआविहवो<sup>(४)</sup> ।

(१) न खलु न खलु माननीयेषु जनेष्वात्मानमपराधिणं करिष्यामि ।

(२) केन पुनः ?

(३) ननु माननीयो भवान् ।

(४) नास्ति मे अतः परं वाग्विभवः ।



(इति शृङ्गारलज्जां नाटयन्ती तूष्णीमधोमुखी तिष्ठति) ।

सुधा । अलमाशङ्क्य । न खलु सुधाकरोऽलीकं मन्त्र-  
यितुं जानाति ।

(कौमुदी तथैवास्ते । सुधाकरो कौमुदीमङ्गमारोपयति । कौमुदी  
वाङ्म्यां सुधाकरं कण्ठे समालिङ्ग्य तदीयवक्षसि सुखमधोमुखं  
संस्थाप्य सवेपथुर्निर्मोलिताक्षी स्पर्शसुखमनुभवति ।

सुधा । (परिक्रामन् स्पर्शसुखं रूपयित्वा स्वगतम्) अहो स्पर्शः !

अस्याः सुकुमारतरं स्पर्शं संचिन्त्य लज्जयाऽऽच्छन्नम् ।

स्पृष्टं कथमपि लोकैर्भलायति कुसुमं शिरीषस्य ॥

(सविस्मयम्) कथं नु मानुषीणामीदृशः सुकुमारतरः  
सन्तर्पणकरश्च स्पर्शः ! नूनमियम्,

पुष्पान्मध्यमलोकस्य द्युलोकस्य तपःक्षयात् ।

चन्द्रविम्बाद्भुवं प्राप्ता मूर्त्ताऽमृतपरम्परा ॥

अविमृष्यकारीव मे स्मरहरः प्रतिभाति । तथाहि,

हरेण कोपज्वलनेन पूर्वं

वथैव दग्धो मकरध्वजोऽभूत् ।

समस्तलोकस्य परं न यूनां

हरत्यकाण्डे यदियं मनांसि ॥

(परिक्रम्य कौमुदी मङ्गादवरोप्य, प्रकाशम्) सुन्दरि, इदं शिला-  
तलमध्यास्य प्रसूनपरागभरितमाचान्तनिर्झरोद्गार-

माकम्पितलतापल्लवमनिलं सेवमाना अममपनयतु  
भवती । क्षमः खल्वेष तवानतिपृथुलमुक्ताजाल-  
श्रियमुद्वहन्तं अमोदकविन्दुस्तोमं सुखयन्नपनेतुम् ।  
कौमु । (उपविश्य सलज्जम्) महाभात्र, उक्कंठदि मे हि-  
अत्रं सहीदंसणस्स । इच्छामि महाभात्रस्स प्पसा-  
आदे उणो वि से दंसणसुहमणुहोदुं<sup>(१)</sup> ।

सुधा । नैतत् पुनर्वक्तव्यम् ।

कौमु । (साग्रहम्) तेण हि तुवरदु महाभात्रो । विलं-  
वासहं मे हिअत्रं<sup>(२)</sup> ।

सुधा । एष गच्छामि (इति चिन्तां नाटयति) !

कौमु । किं विलंबीयदि ?<sup>(३)</sup> ।

सुधा । सुन्दरि, न विलम्ब्यते । एतत्तु विचार्यते, अस-  
हाया खल्विदानीमसि, मा तावत् कोऽप्यनार्यः  
किमप्यत्याहितमाचरेत् ।

कौमु । (सविषादम्) महाभात्र, ण सक्कणोमि सहीवि-

(१) महाभाग, उत्कण्ठते मे हृदयं सखीदर्शनाय । इच्छामि महा-  
भागस्य प्रसादात् पुनरपि तस्या दर्शनसुखमनुभवितुम् ।

(२) तेन हि त्वरतां महाभागः । विलम्बासहं मे हृदयम् ।

(३) किं विलम्ब्यते ?

ओञ्जवाउला अप्पाणं पञ्जवत्यावेदुं<sup>(१)</sup> । (इति रोदिति) ।  
 सुधा । मा कातरा भव । इयममानुषी मुद्रा त्वां  
 रक्षिष्यति । (इति स्वहस्तान्मुद्रामुन्मुच्य कौमुदीहस्ते निवेशयितुं  
 प्रवृत्तः । कौमुदी निमीलिताक्षी स्पर्शसुखमुग्धा तिष्ठति । सुधाकरो-  
 ऽयथासन्निवेशं रूपयन् चिरेण सन्निवेश्य)  
 महाभागे, वनदेवतास्त्वां रक्षन्तु । अयमदूरे  
 तपोवनाभोगः । नास्त्यत्र क्रूरसत्वानां सञ्चारः ।  
 सावधाना तावत् मुहूर्त्तं तिष्ठ । (इति प्रस्थितः) ।

कौमु । (स्वगतम्) ।

कट्टं तीसे विरहो दूमदं विषमं तदोवि ददन्नस्स ।

दोहिं किट्टं हिअन्नं एदं विपुलं समाउलं होइ<sup>(२)</sup> ॥

(प्रकाशं सत्रीडम्) एण क्वु चिरेअव्वं महाभाएण<sup>(३)</sup> ।

सुधा । अयि मुग्धे, एतदपि वक्तव्यम् ! अयमह-  
 मागतएव । (इति परिक्रामति) ।

कौमु । (निःश्वस्यात्मगतम्) सणेहो एणम क्वु इमे पिह-

(१) महाभाग, न शक्नोमि सखीवियोगव्याकुला आत्मानं पर्यवस्था-  
 पयितुम् ।

(२) कष्टं तस्याविरहो दुनोति विषमं ततोऽपि दयितस्य ।  
 दाभ्यां कष्टं हृदयं एतत् विपुलं समाकुलं भवति ॥

(३) न खलु चिरयितव्यं महाभागेन ।



णिज्जो कटुष्पआरो । इदो पिअसहीण विरहो,  
इदो पाणाहिंतेवि पिअअरस्स जीइदसव्वस्सस्स  
पणइअणस्स विच्छेदो । जं सच्चं ण मे धिदिं आवद्-  
धाइ चैअो<sup>(१)</sup> ।

(संस्कृतमाश्रित्य)

समाघूर्णति चेतो मे स्नेहयोगात् द्वयोरपि ।

विरुद्धदिक्कयोर्वाख्योः सन्निपातादिवाल्पकम् ॥

सुधा । (आकर्ण्य खगतम्) वस्तु,—इति वाक्यशेषः । (सहर्षम्)

श्रुतं यत् श्रोतव्यं, शक्यं खल्विदानीं जीवितमव-  
लम्बितुम् । कुतः ?

इयमतिमधुराभिर्वाग्भिरन्तर्गतं यत्

स्फुटयति खलु वाला भावमव्याजरम्यम् ।

न खलु न खलु सैषा केवलं प्रार्थनीया

वयमपि भृशमस्याः प्रार्थनीयत्वमाप्ताः ॥

अपिच,

विरहक्लेशो भूयानपि सह्यो जलधरस्य चपलायाः ।

यदियमनन्यासक्ता निवदूभावा सदैवात्र ॥

(परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य सहर्षम्) लब्धो मया प्रियाऽऽराधने-

(१) स्नेहोनाम खल्वयं स्पृहनीयः कष्टप्रकारः । इतः प्रियसख्या विरहः,  
इतः प्राणेभ्योपि प्रियतरस्य जीवितसर्वस्वस्य प्रणयिजनस्य विच्छेदः !  
यत् सत्यं न मे धृतिमावध्नाति चेतः ।



पचारः । एषा खलु सुन्दरी संयमितकरयुगला शोक-  
व्याकुला ससाध्वसमितस्ततोऽवलोकयन्ती इतएवा-  
गच्छति । लताप्रतानानन्तरिताः पश्यामस्तावदस्या-  
श्चेष्टितम् । (इत्येकान्ते स्थितः) ।

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापरा सुन्दरी) ।

सुन्द । (सोद्वेगम्) हला कोमड, कहिं सि देहि मे पडि-  
वअणं<sup>(१)</sup> । (इति रोदिति) ।

सुधा । नूनमस्याः सखीस्त्रेहोभीयते नान्तरात्मनि ।

इतीवाश्रुच्छलेनोच्चैर्वपुराग्नावयत्यपि ॥

सुन्द । इदो होज्जउ इध वा होज्जउ<sup>(२)</sup> । (इति ससाध्वसा  
लताकुञ्जानि विचिनोति ।

सुधा । आन्दोलिते किसलये मरुता किलैषा

सञ्चारमेणनयना मनुते परस्य ।

ये शान्तये खलु हिता रुचिराः पदार्थाः

शङ्काऽऽकुले मनसि ते प्रथयन्ति शङ्काम् ॥

यत्सत्यं विपरीते चेतसि सर्वमेव विपरीतायते ।

तथाहि,

इयं तीव्रां वाधामिह परिगता सुग्धहृदया

ध्रुवं शान्तिस्थानं गणयति महासाध्वसपदम् ।

(१) अयि कौमुदि, कासि देहि मे प्रतिवचनम् ।

(२) इतो भवेत् इह वा भवेत् ।

जनो मिथ्यादृष्टिप्रणयरसिको भोगपरमः

परं मोक्षं साक्षात् प्रभवमवगच्छत्यतिभिः ॥

सुन्द । (विचिन्त्य सविषादम्) कथं न कर्हिं पि । किं दाणिं  
 कुणामि मन्दभाइणी । (बन्धनवाधां रूपयन्ती) आः कथं  
 करबन्धणमपि पीडेइ । चरणबन्धणं दाव सिठिलं  
 आसि । अप्पेण आआसेण तं तुडिअं । इणमे  
 उण ददुअरं हत्यबन्धणं कथं ओणेमि ? होदु  
 उणोवि जइस्सं<sup>(१)</sup> । (इति हस्तौ धुनोति) ।

सुधा । ददं खलु वडमचभवत्याः करद्वयम् । अभूतां  
 खलु,

अस्याः संयमनस्थानाद्गौरवाद्दिनतभ्रुवः ।

किञ्चिदालोहितस्फीतौ हस्तौ कोपादिवाभितः ॥

सुन्द । (सविषादम्) कथं ण तुडुइ । (विचिन्त्य) किं अदो परं  
 मन्दभाइणीए जीइदेण । (साखम्) हला पिअसहि  
 कोमइ, ण उण जाणामि जीअसि वा ण वा त्ति !  
 मन्दभाइणीए मह एसो पच्चिमो दे माणसो परी-

(१) कथं न कुत्रापि । किमिदानीं करोमि मन्दभागिनी । आः कथं कर-  
 बन्धनमपि पीडयति । चरणबन्धनं तावत् शिथिलमासीत् । अल्पे-  
 नायासेन तत् त्रुटितं । इदं पुनर्दृष्टतरं हस्तबन्धनं कथमपनयामि ।  
 भवतु पुनरपि यतिष्ये ।

रम्भो । (अश्रूणि विमुच्य क्षणान्तरे) । अज्ज सुहाअर, ए  
 पारिअं मए अप्पपुष्पाए तुम्हाणं समाअमं  
 पेक्खिदुं । सुमरिहिंसि मं । एमो दे । (इति प्रणमति ।  
 वास्यावसन्नकण्ठी) एाह सालङ्काअण, एत्थि मे तं  
 पुसं, जेए कमलतंवे दे चलणे सुस्सूसिअ अप्पाणं  
 किदत्थं करामि । परवई क्व, म्हि ए ममाइ  
 पुरोभाइणीए महुरं आलविओ वि भवं । हिअअं  
 दाव आअत्तं अजेगमिप्पि दे एव्व दिसं, ए जानामि  
 तुमए गहिअं ए वा त्ति । अधआ । किं इमिणा  
 विआरिदेण ? एत्तिअमत्तेण क्वु णिव्वुदा म्हि  
 संवुत्ता । ए उए अप्पपुष्पा अदो परं कामेउं  
 पारेइ<sup>(१)</sup> । (इति व्याकुला रोदिति) ।

(१) कथं न त्रुष्यति । किमतः परं मन्दभागिन्या जीवितेन । अयि प्रिय-  
 सखि कौमुदि, न पुनर्जानामि जीवसि वा न वेति । मन्दभागिन्या-  
 मम एष पश्चिमस्ते मानसः परीरम्भः । आर्य्य सुधाकर, न पारितं  
 मया अल्पपुण्याया युवयोः समागमं प्रेक्षितुं । स्मरिष्यसि मां ।  
 नमस्ते । नाथ सालङ्कायन, नास्ति मे तत्पुण्यं येन कमलताम्बौ ते  
 चरणौ श्रुश्रुषित्वा आत्मानं कृतार्थं करोमि । परवती खल्वस्मि । न  
 मया पुरोभागिन्या मधुरमालपितोऽपि भवान् । हृदयं तावदायत्तं  
 अयोग्यमपि तुभ्यमेव दत्तं, न जाने त्वया गृहीतं न वेति । अथवा ।  
 किमनेन विचारितेन ? एतावन्मात्रेण खलु निर्वृताऽस्मि संवृत्ता । न  
 पुनरल्पपुण्या अतः परं कामयितुं पारयति ।



सुधा । (सहर्षम्) । कथं प्रियवयस्यमनुरक्ता तत्रभवती !  
 सुन्द । (निःश्वस्य) दाणिं अहिच्चत्रादेो अप्पाणं पाडेउण  
 वावादेस्सं<sup>(१)</sup> । (इति परिक्रामति) ।

सुधा । महानाधिः खल्वत्रभवत्याः । तन्न युक्तमतः परं  
 विलम्बितुम् ।

(परिक्रम्य सुन्दर्याः सम्मुखे स्थित्वा) आर्य्ये, अलमलमनेन  
 दुर्व्ववसायेन, जीवति ते प्रियसखी । (इति हस्तवन्धनं  
 मोचयति) ।

सुन्द । (सग्रीडमात्मगतम्) हृद्धी हृद्धी ! सर्व्वं मह वअणं  
 सुणिअं महाभाएण । (प्रकाशं साग्रहम्) अज्ज, वन्दामि ।  
 अवि कुसलं पिअसहीए<sup>(२)</sup> ?

सुधा । सर्व्वं कुशलम् ।

सुन्द । अध सा कहिं चिट्ठदि<sup>(३)</sup> ?

सुधा । एहि तावत् । स्वयमेव द्रक्ष्यसि । त्वरतां भवती ।  
 पर्य्युत्सुका खलु सा कथं कथमपि त्वद्विरहकातर-  
 मात्मानं धारयति ।

(१) इदानीमधित्यकातआत्मानं पातयित्वा व्यापादयिष्ये ।

(२) हाधिक् हाधिक् ! सर्व्वं मम वचनं श्रुतं महाभागेन । आर्य्यं, वन्दे  
 अपि कुशलं प्रियसख्याः ?

(३) अथ सा कुत्र तिष्ठति ?



सुन्द । वत्सला क्वु मे पिअसही<sup>(१)</sup> ।

सुधा । इदानीं त्वद्गतजीवितेति भण ।

सुन्द । (सस्मितम्) णं भणामि दाणिं तग्गदजीइदा मे  
पिअसही त्ति<sup>(२)</sup> ।

सुधा । (सस्मितम्) अलं परिहासेन । त्वद्विरहेणातिमात्र-  
मुत्कण्ठिता ते सखी ।

सुन्द । (सस्मितम्) आसि क्वु एव्वं<sup>(३)</sup> ।

सुधा । अथेदानीम् ?

सुन्द । अस्ससंकन्तो से णेहे<sup>(४)</sup> ।

सुधा । किं कारणम् ?

सुन्द । ण क्वु अप्पणो पभवइ<sup>(५)</sup> ।

सुधा । कस्य हेतोः ?

सुन्द । परअसो क्वु एसो<sup>(६)</sup> ।

सुधा । कः पुनरसौ परः ?

(१) वत्सला खलु मह्यं प्रियसखी ।

(२) ननु भणामि इदानीं त्वद्गतजीविता मे प्रियसखीति ।

(३) आसीत् खल्वेवम् ।

(४) अन्यसंक्रान्तस्तस्याः स्नेहः ।

(५) न खल्व्वात्मनः प्रभवति ।

(६) परवशः खल्वेषः ।

सुन्द । सो दाणिं अप्पा । अन्हे दाणिं परा संवुत्ता<sup>(१)</sup> ।

सुधा । भवतु, कोऽसौ ?

सुन्द । कोवि अज्जब्बुवो अणज्जो<sup>(२)</sup> ।

सुधा । अपि ज्ञायते नामधेयतः ?

सुन्द । को तस्स अणज्जस्स णामग्गहणेण अप्पाणं अव-  
राहिणं करिहिइ<sup>(३)</sup> । (इति कृतकदुःखं नाटयति) ।

सुधा । (सविषादमात्मागतम् ) भूयसा गृहीतार्थः पुनरपि  
महता संशयेन विहस्तितोऽस्मि ।

तस्यास्तादृशमुग्धभावमधुराश्चेष्टाः समाश्वासना-

आलिश्लेषमनल्पगूढवचसा मथ्नाति चेतोमम ।

वस्तुन्यत्र किमस्ति वास्तवमिति व्यामूढधीर्निश्चयं

नो गच्छामि विवेकमन्यरमहो सत्यं मनः कामिनाम् ॥

न जाने कमधन्यं धन्यं वा एषा कथयिष्यति ।

(प्रकाशम्) कथय कथय, न खल्वर्हसि प्रथममस्मत्-

प्रणयमुपरोडुम् ।

सुन्द । (सस्मितम्) का गई । एसा कहेमि<sup>(४)</sup> ।

(१) स इदानीमात्मा । वयमिदानीं पराः संवृत्ताः ।

(२) कोऽप्यार्यब्रुवोऽनार्यः ।

(३) कस्तस्यानार्यस्य नामग्रहणेनात्मानमपराधिनं करिष्यति ।

(४) का गतिः । एषा कथयामि ।

सुधा । अवहितोऽस्मि ।

सुन्द । गं सुहाअरो<sup>(१)</sup> ।

सुधा । (सहर्षमात्मगतम्) प्रत्युज्जीवितोऽस्मि । (सवितर्कम्) न खल्वहं प्रत्यभिज्ञातस्तत्रभवत्या, अथवा परिहासोऽयम्? (विभाव्य) असंशयं परिहासोऽयम् । कुतः ?

अमलिनमुखपद्मा भाषते मां मृगाक्षी

कृतकमिव विषादं सस्मितास्या करोति ।

अवितथमनयाऽहं प्रत्यभिज्ञातएव

न खलु परसमत्तं व्यज्यते गोप्यतत्त्वम् ॥

भवतु एवं तावत् । (प्रकाशम्) का पुनरनार्यता सुधाकरेणानुष्ठिता ?

सुन्द । किं अस्मिं । तेण क्वु पिअसहीए हिअअं ओहोरिअं ण उण अब्भुववसो एसो<sup>(२)</sup> ।

सुधा । (सस्मितम्) एतत् कृतं तेन ?

सुन्द । वाढं एदं किदं तेण<sup>(३)</sup> ।

सुधा । न खल्वेतावन्मात्रेणानार्यः सुधाकरः ?

सुन्द । अधइं<sup>(४)</sup> ।

(१) ननु सुधाकरः ।

(२) किमन्यत् । तेन खलु प्रियसख्या हृदयमपहृतं न पुनरभ्युपपन्नैषा ।

(३) वाढमेतत् कृतं तेन ।

(४) अथकिं ।

सुधा । न खल्वत्र सुधाकरोऽपराध्यति ।

सुन्द । को उण<sup>(१)</sup> ?

सुधा । कौमुदीवयस्या सुन्दरी नाम ।

सुन्द । (सवैलक्ष्यम्) कथं विअ<sup>(२)</sup> ?

सुधा । तथा खलु सुधाकरवयस्यस्य हृदयमपहतम् ।

श्रुतं भवत्या ?

सुन्द । (कथमपि वचनं व्यवस्थाप्य सत्रीङ्गम्) सुणिअं । कथं एत्तिअ

मत्तेण सुहाअरो ण अवरञ्जइ<sup>(३)</sup> ?

सुधा । यथा किल सुधाकरवयस्यस्य हृदयमपहतं,

तद्वयस्याया हृदयमपहरन्नपि सुधाकरः कथमपरा-  
ध्यतु ।

सुन्द । (सस्मितम्) तं एदं वुड्भूदजोणिवुत्तन्तं अणु-

हरइ<sup>(४)</sup> ।

सुधा । स पुनः कीदृशः ?

सुन्द । सुणादु महाभाओ । दोल्लं भाअराणं अव-

रओ अदि व्व पचण्डो किणावि भूदजोणिणा

(१) कः पुनः ?

(२) कथमिव ?

(३) श्रुतं । कथमेतावन्मात्रेण सुधाकरोनापराध्यति ?

(४) तदेतद्बुद्धभूतयोनिवृत्तान्तमनुहरति ।



अञ्जुसिअस्स कस्सचि भूदाआसरुक्खस्स मूले णिच्चं  
अमेञ्जं णिक्खिवइस्स । तेण एव्वं उव्वेइओ सो  
भूदजेणी वुड्ढं तास पिअरं सिविणे कहेईअ ;  
अवअरओ दे पुत्तो मं उव्वेइ, ण क्खु इमस्स  
पारेमिं, ता जइ तं ण णिआरेसि, तइ पढमअं  
दे पुत्तं चरक्खस्सं । सक्को क्खु एसो विणअ-  
णम्मो त्ति<sup>(१)</sup> ।

सुधा । (सस्मितम्) किं क्रियताम् । यः खल्वपकारिणं न  
पारयति, स तत्पक्षस्याप्यपक्षत्य वैरशुद्धिं करोति ।  
अर्करश्मिसन्तप्तो मतङ्गजस्तत्पक्षं कमलाकरमा-  
लोडयन्नत्र प्रथमं निदर्शनम् ।

सुन्द । (विहस्य) सुट्टु क्खु सुपुरिसवुत्तं अणुड्ढिदं भवदा<sup>(२)</sup> ।

सुधा (सस्मितम्) भवत्याऽपि सुमहिलावृत्तम् ।

सुन्द । (सत्रीङ्गम्) ण क्खु परिकुविदो भवं<sup>(३)</sup> ?

(१) ष्टणोतु महाभागः । द्वयोर्भ्रात्रोरवरजोऽतीव प्रचण्डः केनापि भूतयो-  
निनाऽध्युषितस्य कस्यचिद्भूतावासवृक्षस्य मूले नित्यं अमेध्यं निक्षिपति  
स्म । तेनैवमुद्देजितः स भूतयोनिर्वृद्धं तस्य पितरं स्वप्नेऽकथयत् ;—  
अवरजस्ते पुत्रो मामुद्देजयति, न खल्वस्य पारयामि, तत् यदि तं  
न निवारयसि तदा प्रथमजन्ते पुत्रं अत्स्यामि, शक्यः खल्वेष विनय-  
नम्—इति ।

(२) सुष्टु खलु सुपुरुषवृत्तमनुष्ठितं भवता ।

(३) न खलु परिकुपितो भवान् ?

सुधा । किमनिमित्तं कुप्यते ।

सुन्द । अणुगहीदग्निः । वत्रस्सत्रणकिलेसं पेक्खिअ  
चवलाए मए क्वु एव्वं कीलिअं । ता क्वमदु  
मं भवम्<sup>(१)</sup> ।

सुधा । समानमत्रावयोर्निमित्तम् । तदत्र नैकएकेन  
क्षमापनीयः । तदेहि एकाकिनी किल ते सखी  
तिष्ठति । (इति परिक्रामतः) ।

सुन्द । कहिं मे पिअसही चिट्ठदि ? तुवरइ मे हिअअं  
तीसे दंसणस्स<sup>(२)</sup> ।

सुधा । अत्र युवयोः समविभागः प्रणयः । सखि, किं  
वहुना,

त्वां विना ते प्रियसखी नलिनीव दिनश्रियम् ।

परिस्नानाम्बुजमुखी तदुल्लासय सेव ताम् ॥

सुन्द । कथं उण अउभववणा पिअसही भवदा<sup>(३)</sup> ?

सुधा । यहच्छयाऽत्र विचरतैकस्मिन् दुर्गमप्रदेशे लता-

(१) अनुगृह्यताऽस्ति । वयस्यजनक्लेशं प्रेक्ष्य चपलया मया खल्वेवं क्रोडितं ।

तत् क्षमातां मां भवान् ।

(२) कुत्र मे प्रियसखी तिष्ठति ? त्वरते मे हृदयं तस्या दर्शनाय ।

(३) कथं पुनरभ्युपपन्ना प्रियसखी भवता ?

मण्डपान्तः संयमितकरचरणा मूर्च्छिता ते सखी  
मयोपलब्धा ।

सुन्द । (सोद्वेगम्) तदो तदो<sup>(१)</sup> ?

सुधा । ततोऽहमुन्मुच्य बन्धनानि प्रत्यागतचेतनां वि-  
धाय तामिह संरक्ष्य भवदन्वेषणाय प्रवृत्तः । इति  
कौमुदीमङ्गुल्या दर्शयति ।

सुन्द । (सत्वरमुपसृत्य) हला पित्रसहि, दिङ्हा सि उण  
मन्दभाङ्गीण<sup>(२)</sup> ! (इत्यञ्चूणि मुञ्चति) ।

कौमु । (उत्थाय सास्रम्) हला जीत्रसि ? गाढं परिस्सज-  
सु मं<sup>(३)</sup> ।

(अन्योन्यं परिस्वजेते) ।

सुधा । (स्वगतम्) अहो मधुरोऽनयोर्भावः । युज्यते  
खल्वेतत् ।

अव्याजमधुरं प्रेम सुग्धानामेव योषिताम् ।

कठोरनीतिनिष्ठानां नराणां कृत्रिमं हि तत् ॥

स्त्रीपुंसयोस्तु प्रणयो नानेनोपमेयः । यतः,

दयितासु वल्लभानां प्रायेण भवत्युपाधिजः प्रेमा ।

निरुपाधिप्रेमाणो द्वित्रा यदि जगति विजयन्ते ॥

(१) ततस्ततः ?

(२) अयि प्रियसखि, दृष्ट्वाऽसि पुनर्मन्दभागिन्या !

(३) अयि, जीवसि ? गाढं परिस्वजस्व माम् ।



तत्रापि स्त्रियएवोत्तमर्णाः । कुतः ?

निर्याजप्रियतानां स्त्रीणां लोकः कथं भवेदनृणः ।

याः खलु जहति प्राणान् परेतमपि दयितमालिङ्ग्य ॥

(प्रकाशम्) बलवत् खलु परिश्रान्ता तत्रभवती । इदं  
स्फटिकशिलातलमध्यास्य विश्राम्यतां भवत्यौ ।

(उभे तथा कुरुतः) ।

सुन्द । णं भवा वि शिलाअलेकदेशमलङ्करेदु<sup>(१)</sup> ।

(कौमुदी किञ्चिदपस्यत्य द्यतककोपा सुन्दरीमवलोकयति । सुधाकरः  
शिलातलैकदेशे उपविशति) ।

सुधा । कः पुनरनार्यो भवत्योः क्लेशमूलम् ?

सुन्द । णाहं सका । पिअसही कहेदु<sup>(२)</sup> ।

कौमु । (स्वगतम्) का गई । (प्रकाशम्) सुणादु महाभाओ ।

अज्ज किल चउइही त्ति भअवदो खलवाणिस्स  
जत्तामहुस्सवदंसणत्थं अन्हे गदाओ<sup>(३)</sup> ।

सुधा । ततस्ततः ?

कौमु । तदो महुस्सवं पेक्खिअ जाव पडिणिवुत्ताओ  
अन्हे दाव भअङ्करवेसाए काइणा वि इहाणेहीअ

(१) ननु भवानपि शिलातलैकदेशमलङ्करोतु ।

(२) नाहं शक्ता । प्रियसखी कथयतु ।

(३) का गतिः । इच्छते तु महाभागः । अद्य किल चतुर्दशीति भगवतः  
शूलपाणेर्यात्रामहोत्सवदर्शनार्थमावां गते ।



संजमिदाओ । एत्तिअमत्तं अहं जाणामि । तदो  
महाभाएण अब्भुववस्सा म्हि<sup>(१)</sup> ।

सुधा । नूनं तस्यैव कापालिकापसदस्य दुश्चेष्टितमेतत् ।  
याऽपि वामिहानीतवती, साऽपि तस्यैव शिष्या  
कङ्कालमालिनीति तर्कयामि ।

सुन्द । उववसो तक्को अज्जस्स । एव्वं क्वु हदासाए  
भणिअं । लद्धं मए गुव्वाराहणोवअरणं, इमिणा  
क्वु उवअरणेण चामेण्डामारज्ज्ज सिद्धमन्ता  
होहिन्ति गुरुओ त्ति<sup>(२)</sup> ।

सुधा । कस्य पुनरपरस्यैतादृशं नैष्ठुर्यम् ।

कौमु (सविषादम्) उक्कंठइ मे हिअअं पिअराणं चलणे  
वन्दिउं । एत्तिअकालं मं अपेक्खन्ता वाउला क्वु  
पिअरा त्ति सम्भावेमि<sup>(३)</sup> ।

(१) ततोमहोत्सवं प्रेक्ष्य यावत् प्रतिनिवृत्ते आवां, तावद्भयङ्करवेश्या  
कयाऽपि इहानीय संयमिते । एतावन्मात्रमहं जानामि । ततो-  
महाभागेनाभ्युपपन्नाऽस्मि ।

(२) उपपन्नस्तर्ककार्यस्य । एवं खलु हताशया भणितं । लब्धं मया गुर्वा-  
राधनोपकरणम् । अनेन खलूपकरणेन चामुण्डामाराध्य सिद्धमन्ता-  
भविष्यन्ति गुरवः — इति ।

(३) उक्कण्ठते मे हृदयं पित्रोश्चरणान् वन्दितुं । एतावत्कालं मामपश्य-  
न्तौ व्याकुलौ खलु पितराविति संभावयामि ।

सुधा । युज्यते ।

(कौमुदी सुन्दरीमुखमवलोकयति) ।

सुन्द । इच्छदि पित्रसखी महाभाण्ण घरं पाबिदा  
पित्ररे वन्देउं<sup>(१)</sup> ।

सुधा । नैतद्वक्तव्यम् ।

सुन्द । लज्जइ क्वु एसा महाभाअं आआसेउं<sup>(२)</sup> ।

कौमु । (स्रगतम्) साहु सुन्दरि, साहु, मह ज्जेव्व हि-  
अण्ण मन्तिदवदीसि<sup>(३)</sup> ।

सुधा । मा मैवम् । विधेयोऽस्मि वां । (सस्मितम्) न खलु  
मामुदासीनमवगच्छति ते सखी ?

सुन्द । (सस्मितम्) किं अस्सं अोगच्छदु । को उण्ण अस्सो  
मिलाणकमलिनीसरिसम्पि उवेक्खइ<sup>(४)</sup> ।

(कौमुदी सुन्दरीमङ्गल्या तर्ज्जयति) ।

सुधा । तर्हि अयुक्तमुदासीनस्यात्रावस्थानम् ।

(इत्युत्तिष्ठति) ।

कौमु । (जनान्तिकम्) हदासे, पसादेहि दाव महाभाअं ।

(१) इच्छति प्रियसखी महाभागेन गृहं प्रापिता पितरौ वन्दितुम् ।

(२) लज्जते खल्वेषा महाभागमायासयितुम् ।

(३) साधु सुन्दरि, साधु, ममैव हृदयेन मन्वितवत्यसि ।

(४) किमन्यदवगच्छतु । कः पुनरन्योस्नानकमलिनीसदृशीमप्युपेक्षते ।

मा उणोवि से हदासाए करअलवत्तिणी हेहि<sup>(१)</sup> ।

सुन्द । (विहस्य) हला एत्तिअं णिमित्तं पसाअणस्स<sup>(२)</sup> ?

कौमु । (सासूयम्) एअसीए अवथाए वि कीलसि<sup>(३)</sup> ।

सुन्द । (सकोपमिव) ण कीलिसं<sup>(४)</sup> ।

कौमु । तेण हि पसादेहि महाभाअं<sup>(५)</sup> ।

(सुधाकरः परिक्रामति) ।

सुन्द । जा अवरज्जइ सो पसादेदु । अणस्स को  
अच्चओ<sup>(६)</sup> ।

कौमु । दुव्विणीदे, पसादेहि दाव<sup>(७)</sup> । (इति कातय्यं  
नाटयति) ।

सुन्द । (स्वगतम्) का गई । (प्रकाशम्) महाभाअ, कौमुदी  
पसादेइ क्वमीअदु इमो अबराहो त्ति<sup>(८)</sup> ।

(१) हताशे, प्रसादय तावन्महाभागं । मा पुनरपि तस्या हताशायाः कर-  
तलवर्त्तिणी भव ।

(२) अयि, एतावन्निमित्तं प्रसादनस्य ।

(३) ईदृश्यामवस्थायामपि क्रीडसि ?

(४) न क्रीडिष्यामि ।

(५) तेन हि प्रसादय महाभागम् ।

(६) योऽपराध्यति स प्रसादयतु अन्यस्य कोऽत्ययः ।

(७) दुर्विनीते, प्रसादय तावत् ।

(८) का गतिः । महाभाग, कौमुदी प्रसादयति क्षम्यतामयमपराधइति ।



सुधा । (प्रतिनिवृत्त्य) एकेन समयेन श्वन्तुमिच्छामि ।

सुन्द । किणा उण<sup>(१)</sup> ?

सुधा । अत्रभवती मां स्वजनमवगच्छतु ।

सुन्द । (सस्मितम्) किमिममाशासीअदि<sup>(२)</sup> ?

सुधा । शृणुमस्तावत् ।

सुन्द । हला कौमइ, पडिवज्जसु दाव पडिवअणं<sup>(३)</sup> ।

कौमु । (सासूयम्) अलं कीलिदेण । उक्कंठइ मे हिअइ  
पिअरे पेक्खदुं<sup>(४)</sup> ।

सुन्द । अदोज्जेव्व तुवरदु पडिवअणस्स<sup>(५)</sup> ।

कौमु । तुमं मे मुहं होहि<sup>(६)</sup> ।

सुन्द । (खगतम्) न जुत्तं विलंविदुं, काअरा क्वु एसा  
दीसइ । (प्रकाशम्) महाभाअ, कोमई विस्सवेदि जा  
इन्दो महाभाअस्स त्ति<sup>(७)</sup> ।

(१) केन पुनः ?

(२) किमिदमाशास्यते ?

(३) अथि कौमुदि, प्रतिपद्यस्व तावत् प्रतिवचनम् ।

(४) अलं क्रीडितेन । उत्कण्ठते मे हृदयं पितरौ प्रेक्षितुम् ।

(५) अतएव त्वरतां प्रतिवचनाय ।

(६) त्वं मे मुखं भव ।

(७) न युक्तं विलम्बितुं कातरा खल्लेषा दृश्यते । महाभाग, कौमुदी  
विज्ञापयति यच्छब्दो महाभागस्येति ।



सुधा । अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुन्द । अध घरगमनस्य को विलम्बो<sup>(१)</sup> ।

सुधा । न खलु कोऽपि । प्रतिष्ठेतां भवत्यौ ।

(उभे उत्तिष्ठतः) ।

( नेपथ्ये ) ।

आः पाषे, कदानीं यास्यसि ।

क्रोधस्फुर्जितकेशरस्य विकटव्याघूर्णिताक्षस्य वा

हर्षक्षस्य बुभुक्षितस्य जरठाट्टंघ्रान्तरालान्मृगीम् ।

त्रातुं वाञ्छति कोविवेकरहितस्तेनैव साद्धं बला-

क्षामुण्डामिह चण्डमुण्डमथिनीमृधोमि चण्डां त्वया ॥

इयमहमिदानीम्,

चञ्चत्तीक्ष्णासिधरैः परिमृदुलपयोजन्मकाण्डोपमात्ते

सञ्चिन्नात् कण्ठनालाद्दहलवलवलच्छोणितैः कोष्णाधरैः ।

चामुण्डां मुण्डमालारुधिरकरतलालङ्कृतां शात्रवाणां

साक्षाद्मृधोमि भूयः सपिशितवलिभिर्योगिनीनां गणांश्च ॥

कौमु । (भयं रूपयित्वा) महाभात्र, परित्तात्रसु परित्ता-

त्रसु । तीसे वित्र हदासाए सरसंजोत्रो सुणी-

त्रदि<sup>(२)</sup> ।

(१) अथ गृहगमनस्य को विलम्बः ?

(२) महाभाग, परित्रायस्व परित्रायस्व । तस्या इव हताशयाः स्वर-  
संयोगः श्रयते ।

सुधा । न भेतव्यम् ।

(ततः प्रविशति क्रुद्धा खड्गहस्ता कङ्कालमाश्रित्वा । कौमुदी वेपते) ।

कङ्का । (कौमुदीमवलोक्य सरोषम्) ।

शमी ज्वलत्कोटरवह्निनेव

सन्तप्यमानाऽन्तरसम्भृतेन ।

क्रोधाग्निनाऽतिक्रमजेन भूयो

निर्व्वापयामि क्षतजैस्त्वैनम् ॥

(इति परिक्रामति)

सुधा । आः पापे,

कथमिमामनवाप्तमनोरथां

व्यवसिताऽसि विहन्तुमपापिनीम् ।

अपचयोन्मुखमेव सुधाकरं

ग्रसति राजरपूर्णकलं न तु ॥

कङ्का । (अनाकर्णितकेन) ।

ध्वान्तस्येव प्रतीपां मे क्षुद्रां दीपशिखामिव ।

वात्येव त्वां हराम्येषां यः शक्नोति स रक्षतु ॥

(इत्युद्धतं परिक्रामति । कौमुदी भूयोवेपते) ।

सुधा । (सकोपम्) आः पापे, कथं खल्वसि,

विलोचनानां कमनीयमुत्सवं

चक्षुश्मतः सर्व्वजनस्य सर्व्वदा ।

सदा प्रफुल्लास्यमनोहरामिमां

हन्तुं त्रियामा नलिनीमिवोद्यता ॥

कङ्का । (अनाकर्णितमेव नाटयन्ती) देवि, चामुण्डे, गृहा-

णैनाम् । (इति खड्गमुद्यम्य धावति । कौमुदी मूर्च्छिता पतति ।

सुन्दरी स्तब्धा तिष्ठति) ।

सुधा । (ससम्भ्रमम्) सुन्दरि, सुन्दरि, शुश्रूषस्वैनाम् । अह-

मेतां दुष्टतापसीं शिष्ययामि । (इति खड्गमाक्षिप्य वलात्

कङ्कालमालिनीं निवारयति) ।

कङ्का । (सक्रोधम्) आः पाप, त्वमपि नाम चामुण्डोपहा-

राय भवसि । (इति सुधाकरं तर्ज्जयति) ।

सुधा । आः पापे, दुष्टतापसि,

निशाचरीमिव क्रूराजनार्थ्यां त्वां सुधाकरः ।

न चिरादुद्धराम्येष साक्षाद्विषलतामि ॥

कङ्का । (विकटं विहस्य) साधु ब्राह्मणडिम्भ, साधु !

संचस्त्रैरगतोव्याघ्रशः क्रोष्टुभिः क्रुश्यते यथा ।

मत्समक्षं तथैव त्वमनात्मज्ञ, विकत्यसे ! ॥

हताश, न खल्वात्मानं भारभूतमवैषि ? कथं रे

सुद्रोऽपि महतां वाचं भाषमाणो नापत्रपसे ?

सुधा । दुष्टे, वृथा गर्विते, अलमलमनेन,

लौहस्य भारात् खलु गौरवाढ्यः

स्वल्पप्रमाणोऽपि मणिर्विशुद्धः ।

मृगेन्द्रपोतोऽपि करौन्द्रहन्ता

कचं दहत्यल्पतरोऽपि वक्त्रिः ॥

स्मरेदानीं यत् स्मर्त्तव्यम् ।

कङ्का । अलमुत्तरोत्तरेण । नातिचिरात् चास्यसि,

यः स्मर्त्तव्यं स्मरिष्यति ।

सुधा । दुष्टे, अलं बहु विकत्थ्य । कर्मणैवाधरोत्तर-

भावो व्यक्तीभविष्यति । तदेहि, विमर्द्दक्षमं देशमा-

श्रयावः । (इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ) ।

सुन्द । (सुप्तोत्थितेव प्रकृतिमापन्ना ससम्भ्रमं चेजाञ्चलेन कौमुदीं वीजयन्ती)

समस्ससिहि सहि, समस्ससिहि । सर्वथा कदत्थण-

परं देवमग्हे किदकच्चं दाणिं संपस्सम् । इमा क्वु,

तिष्ठा सत्तुव्वसणं उणवि किलिट्ठा दुरन्तपलएण ।

मुत्तो उवप्पवादो क्खो चन्दो अत्रालजलएहिं<sup>(१)</sup> ॥

(निःश्वस्य) हृदासे, दुट्टतावसि, अत्रालप्यउत्ता मेह-

माला वसन्तसमअलच्छीं विअ लोअण्णाणन्द-

दाइणीं इमां अहिभविहीअ कं वा लाहं पेक्खसि ।

(१) समाश्वसिहि सखि, समाश्वसहि । सर्वथा कदर्थनपरं दैवमस्माकं

कृतकृत्यमिदानीं सम्पन्नम् । इयं खलु,

तीर्णा शत्रुव्यसनं पुनरपि क्लिष्टा दुरन्तप्रलयेन ।

सुक्त उपप्लवात् क्वन्नश्चन्द्रोऽकालजलदः ॥



भञ्जवदि, परिव्वाइए, एसो हे सणेहसव्वस्सं  
जणो अहिभविज्जइ । रक्खसु दाव णं । कथं महा-  
भाओ सुहाअरो वि चिरेइ । किं दाणिं करामि  
मन्दभाइणी<sup>(१)</sup> । (इति रोदिति) ।

(ततः प्रविशति व्याकुलः सुधाकरः) ।

सुधा । (सत्वरमुपहृत्य) महाभागे, समाश्वसिहि समाश्व-  
सिहि ।

आवध्य तां गाढममेध्यभावां

स्त्रीत्वादवध्यां परिशुद्धकारौ ।

प्राप्तोऽहमेष प्रतिबुध्य तन्मा-

मानन्दयेन्दुप्रतिमानने, त्वम् ॥

सुन्द । सहि, समस्सस समस्सस । एसो क्खु णिग्गही-  
हीअ दुट्ठतावसीं संपत्तो महाभाओ । अहिनन्देहि  
दाव णं<sup>(२)</sup> ।

(१) हताशे, दुष्टतापसि, अकालप्रवृत्ता मेघमाला वसन्तसमयलक्ष्मीमिव  
लोचनानन्ददायिनीमिमामभिभूय कां वा लाभं पश्यसि । भगवति,  
परिव्राजिके, एष ते स्नेहसर्व्वखं जनोऽभिभूयते, रक्ष तावदेनाम् ।  
कथं महाभागः सुधाकरोऽपि चिरयति । किमिदानीं करोमि  
मन्दभागिनी ।

(२) सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । एष खलु निगृह्य दुष्टतापसीं  
सम्प्राप्तो महाभागः । अभिनन्दय तावदेनम् ।

(कौमुदी प्रत्यागच्छति) ।

सुधा । सुन्दरि, दिष्ट्या वर्द्धसे ।

प्रत्यासन्ने सवितरि तमोमुच्यमानेव साक्षात्

किञ्चिन्नक्षत्रप्रकृतिमधुरा मर्त्यलोकस्य लक्ष्मीः ।

अस्तप्राये प्रलयसमये नूनमासन्नबोधा

स्निग्धच्छायारुचिरकरणा लक्ष्यते ते सखीयम् ॥

सुन्द । (सहर्षम्) जह भवं तक्केइ । णं पहाअकमलिनी  
विअ पपफुल्लप्पाअवअणा कखु पिअसही दोसइ<sup>(१)</sup> ।कौमु । (उन्मील्य चक्षुषी) हला सुन्दरि, अविणाम उव-  
सन्तमच्चाहिदं<sup>(२)</sup> ?सुन्द । अधइं । इमिणा किल महाभाएण णिग्गाहि-  
हीअ संजमिदा सा दुट्टतावसी, ता उत्थेहि<sup>(३)</sup> ।कौमु । (खगतम्) मम्यि त्ति किं ण भणसि ? (प्रकाशम्) पच्चु-  
जीविदा म्हि<sup>(४)</sup> । (इत्यत्तिष्ठति) ।(१) यथा भवान् तर्कयति । ननु प्रभातकमलिनीव प्रफुल्लप्रायवदना खलु  
प्रियसखी दृश्यते ।

(२) अयि सुन्दरि, अपि नाम उपशान्तमत्याहितम् ?

(३) अथ किम्, अनेन किल महाभागेन निगृह्य संयमिता सा दुष्टतापसी,  
तदुत्तिष्ठ ।

(४) मामपीति किं न भणसि ? प्रत्युज्जीविताऽस्मि ।

सुन्द । ए क्वु एदेण वाबारेण णादिकिलिडो महा-  
भात्रो<sup>(१)</sup> ?

सुधा । (सस्मितम्) लब्धौषधः साम्प्रतमक्लिष्टोऽस्मि ।

(कौमुदी लज्जते) ।

सुन्द । णिव्वुदा म्हि<sup>(२)</sup> ।

सुधा । (कौमुदीं प्रति) अपि प्रकृतिमापन्नानि तेऽङ्गानि ?

कौमु । महाभात्रस्स प्पसात्रादे<sup>(३)</sup> ।

सुधा । प्रियं नः ।

कौमु । हला सुन्दरि, इमिणा निञ्जरसीभरवस्सिणा  
कुसुमरेणुमन्थरेण मन्दमारुदेण पकिदित्था म्हि  
संवुत्ता । ता विस्सवेहि महाभात्रं घरगमणस्स<sup>(४)</sup> ।

सुधा । यद्येवं, लघु लघु प्रतिष्ठस्व ।

(सर्वे उत्थाय परिक्रामन्ति) ।

सुधा । अयमवरोहणमार्गः । शनैः शनैरवरोहतां  
भवत्यौ ।

(१) न खल्वेतेन व्यापारेण नातिक्लिष्टो महाभागः ?

(२) निर्वृताऽस्मि ।

(३) महाभागस्य प्रसादात् ।

(४) अथि सुन्दरि, अनेन निर्भरशीकरवर्षिणा कुसुमरेणुमन्थरेण मन्दमा-  
रुतेन प्रकृतिस्थाऽस्मि संवृत्ता । तद्विज्ञापय महाभागं गृह्यगमनाय ।

सुन्द । महाभात्र, अदिमत्तं कात्ररा क्वु एसा । ए  
 अप्पणा ओरोहुं सक्हिइ त्ति तक्केमि । ता एं  
 ओलंबिदुं अरिहेइ महाभाओ<sup>(१)</sup> ।

सुधा । तथा । (इति कौमुदीमवलम्बते) ।

(सर्वे अवरोहणं नाटयन्ति) ।

सुन्द । एं कदमेण उण पन्थिणा दाणिं गमिस्सामे<sup>(२)</sup> ।

सुधा । नन्वमुनैव श्रूलपाणिमन्दिराभ्यर्णचरेण ।

कौमु । वेवइ मे हिअअ<sup>(३)</sup> ।

सुधा । अयि भीरु,

सुकोमलाङ्गी खलु मङ्गलार्हा  
 त्वं दैवतैरेव हि रक्षणीया ।  
 वनान्तराले हि लता प्रस्रुता  
 न रक्ष्यते संवृतिभिर्मनुष्यैः ॥

अपिच ।

अस्य रूपस्य तन्वङ्गि, सुकुमारतरस्य ते ।

परिणामः कथं नाम शोचनीयो भविष्यति ?

(१) महाभाग, अतिमात्रं कातरा खल्वेषा । नात्मना अवरोहुं शक्यतीति  
 तर्कयामि । तदेनामवलम्बितुमर्हति महाभागः ।

(२) ननु कतमेन पुनः यथा इदानीं गमिष्यामः ?

(३) वेपते मे हृदयम् ।



तदलमाशङ्क्य । गच्छाग्रतः । सुन्दरि, त्वमपि सख्या-  
अग्रतोभव ।

सुन्द । तह<sup>(१)</sup> । (इति परिक्रामति) ।

(सर्वे परिक्रम्य निष्क्रान्ताः) ।

इति कौमुदीसुधाकरे तृतीयोऽङ्कः ॥०॥

## चतुर्थोऽङ्कः ।



(ततः प्रविशतः पुष्पावचयमभिनयन्त्यौ चेश्यौ) ।

प्रथमा । हला कलहंसिए, जारिसो भट्टा तारिसी  
भट्टीणी त्ति जं सच्चं णिव्वुदं मे हिअत्रं । तुमं वा  
कहं मससि<sup>(१)</sup> ?

द्वितीया । हला मअरन्दिए, किं इमस्मि मन्तव्वं ।  
अवाच्चः ख्खु विही संवुत्तो<sup>(२)</sup> ।

मक । एव्वं णोदं । दिट्ठिआ ख्खु भट्टीणी अणुरूवं  
भत्तारं पत्ता । ण ख्ख राअमन्ती वसुमित्तो भट्टा  
विअ गुणवन्तो<sup>(३)</sup> ।

कल । अधइं । (स्मितं कृत्वा) तह वि सो राअमन्ती<sup>(४)</sup> ।

---

(१) अयि कलहंसिके, याट्टशोभर्ता ताट्टशी भट्टिणी इति यत् सत्यं  
निर्वृतं मे हृदयम् । त्वं वा कथं मन्यसे ?

(२) अयि मकरन्दिके, किमत्र मन्तव्यम् । अवाच्यः खलु विधिः संबुत्तः ।

(३) एवमिदम् । दिष्ट्या खलु भट्टिणी अनुरूपं भर्तारं प्राप्ता । न खलु  
राजमन्त्री वसुमित्तो भर्तेव गुणवान् ।

(४) अधकिम् । तथापि स राजमन्त्री ।

मक । ए क्वु धणरासो मणस्स रुइं उप्पादेइ महानु-  
हाआणं इत्थिआणं<sup>(१)</sup> ।

कल । किं भणसि ? ए क्वु दरिद्वत्तणं पत्थणिज्जं  
मणसि महाणुहाआणं ? एं धणं ज्जेव्व रोअदि  
मणस्स । एत्थ दाव अम्हे ज्जेव्व णिअस्सणं<sup>(२)</sup> ।

मक । ए क्वु ए क्वु । मा दाव अम्हाणं रुइए महा-  
नुहाआणं रुइं अणुमाउं अरिहेसि<sup>(३)</sup> ।

कल । (सवैलक्ष्यम्) सच्चं, अप्पाहिलासो क्वु अम्हेरिसो  
जनो महाणुहाआ उण विबुलेहिं अहिलासेहिं  
आउलीकरीअन्ति । अदो ज्जेव्व ते महासआ,  
अम्हेरिसा उण खुद्दासआ त्ति भणीअन्ति<sup>(४)</sup> !

मक । (स्मितं कृत्वा) ए क्वु एव्वं पडिबत्तुमरिहेसि । णि-  
गुणो भत्तारो धणवन्तो वि महाणुहाआणं इत्थि

(१) न खलु धनराशिर्मनसोरुचिमुत्पादयति महानुभावानां स्त्रीणाम् ।

(२) किं भणसि ? न खलु दरिद्रत्वं प्रार्थनीयं मन्यसे महानुभावानाम् ?  
ननु धनमेव रोचते मनसे । अत्र तावदावामेव निदर्शनम् ।

(३) न खलु न खलु । मा तावदस्माकं, एत्था महानुभावानां रुचिमनु-  
मातुमर्हसि ।

(४) सत्यं, अल्पाभिलाषः खल्वस्मादृशो जनः, महानुभावाः पुनर्विपुलैरभि-  
लाषैराकुलीक्रियन्ते । अतएव ते महाशयाः, अस्मादृशाः पुनः क्षुद्रा-  
शया इति भण्यन्ते !

आणं पेम्मप्पदं ण होइ त्ति भणमि । अजुत्तव्वअ-  
हारी किल जणो ण मणो लग्गइ । मणो खलु मूलं  
सुहस्स ण धणं<sup>(१)</sup> ।

कल । को वा विप्पडिबज्जइ । ण खलु राअमन्ती णि-  
गुणो होइ त्ति तक्केमि<sup>(२)</sup> ।

मक । सहि, ण जाणसि तं जिणा एव्वं भणसि । ण के-  
अलं णिगुणो जाव दुग्गुणो खलु सो<sup>(३)</sup> ।

कल । अथ भट्टारअभट्टिणीणं मज्जे कमदिसएण पस-  
सभाअधेअं तक्केसि<sup>(४)</sup> ?

मक । (स्मितं कृत्वा) तुमं वा कं तक्केसि<sup>(५)</sup> ?

कल । जइ मां पुच्छसि, तइ अहिअभग्गवन्तो भट्टा-  
रओ<sup>(६)</sup> ।

(१) न खल्वेवं प्रतिपत्तुमर्हसि । निर्गुणो भर्ता धनवानपि महानुभावानां  
स्त्रीणां प्रेमास्पदं न भवति इति भणामि । अयुक्तव्यवहारी किल  
जनो न मनसि लगति । मनः खलु मूलं सुखस्य न धनम् ।

(२) कोवा विप्रतिपद्यते । न खलु राजमन्त्री निर्गुणो भवतीति तर्कयामि ।

(३) सखि, न जानासि तं, येनैवं भणसि । न केवलं निर्गुणो यावद्गुणः  
खलु सः ।

(४) अथ भट्टारकभट्टिन्योर्मध्ये क्वमतिशयेन प्रसन्नभागधेयं तर्कयसि ?

(५) त्वं वा कं तर्कयसि ?

(६) यदि मां पृच्छसि, तदा अधिकभाग्यवान् भट्टारकः ।



मक । कथं विञ्च<sup>(१)</sup> ?

कल । अलोकसामान्यगुणा भट्टिणी कौमुदी<sup>(२)</sup> ।

मक । एं भट्टारकरो सुहाअरो वि अलोकसामान्यगुणा  
ज्जेव्व<sup>(३)</sup> ।

कल । दुक्करं खलु, सोआमणीजलहराणं सुन्देर-  
विसेसणिव्वअणं, किं तु जो मे पच्चओ सो दे  
कहिओ<sup>(४)</sup> ।

मक । साहु मणसि तुमं<sup>(५)</sup> । (इति पुष्पावचयं नाटयतः) ।

मक । हला कलहंसिए, जाणसि तुमं किं णिमित्तं  
भट्टिणीए पुप्फावअअस्स<sup>(६)</sup> ।

कल । जानामि । णोवच्छरअणा<sup>(७)</sup> ।

मक । ता किं अप्पणो<sup>(८)</sup> ?

(१) कथमिव ?

(२) अलोकसामान्यगुणा भट्टिणी कौमुदी ।

(३) ननु भट्टारकः सुधाकरोऽप्यलोकसामान्यगुणएव ।

(४) दुक्करं खलु सौदामनीजलधरयोः सौन्दर्यविशेषनिर्व्वचनम् । किन्तु  
यो मे प्रत्ययः स ते कथितः ।

(५) साधु मन्यसे त्वम् ।

(६) अयि कलहंसिके, जानासि त्वं किं निमित्तं भट्टिन्याः पुष्पावचयस्य ?

(७) जानामि । नेपथ्यरचना ।

(८) तत् किमात्मनः ?

कल । ए दाव अप्पणो किं तु अज्जाए सुन्दरिए<sup>(१)</sup> ।  
मक । जुज्जदि । सा क्वु दोईअं उच्चसिअं भट्टि-  
णीए<sup>(२)</sup> ।

कल । अधइं । एत्थ उए णिमित्तन्तरं पि अत्थि<sup>(३)</sup> ।  
मक । किं त्ति<sup>(४)</sup> ?

कल । भट्टिणी किल कुसुमणेवच्छेण अलं कदुअ  
अज्जसालंकाअणस्स तां पडिवाएहिइ<sup>(५)</sup> ।

मक । अम्म संविहाणअं भट्टिणीए ! इमिणा क्वु सं  
विहाणेण अणुरुबं भत्तारं पाविअ अज्जा सुन्दरी  
ए सुमरिहिइ सअणस्स<sup>(६)</sup> ।

कल । ऐव्वं एदं<sup>(७)</sup> ।

मक । हला कलहंसिए, किं त्ति महारिहं रअण-

(१) न तावदात्मनः, किन्तु आर्यायाः सुन्दर्याः ।

(२) युज्यते । सा खलु द्वितीयमुच्चसितं भट्टिन्याः ।

(३) अथ किं । अत्र पुनर्निमित्तान्तरमप्यस्ति ।

(४) किमिति ?

(५) भट्टिनी किल कुसुमनेपथेनालङ्कृत्य आर्यसालङ्कायनाय तां प्रतिपाद-  
यिष्यति ।

(६) अहो संविधानकं भट्टिन्याः? अनेन खलु संविधानेन अनुरूपं  
भर्तारं प्राप्य आर्या सुन्दरी न स्मरिष्यति स्वजनस्य ।

(७) एवमेतत् ।

शोबच्छं अदिक्कमिअ कुसुमशोबच्छे भट्टिणीए किदो  
वहुमाणो ? ए कखु लोहो तहिं कालणं<sup>(१)</sup> ?

कल । (कण्ठो पिधाय) सन्तं पावं । तारिसीए महाणुहाआए  
कथं एरिसो लोहो संभवइ<sup>(२)</sup> ?

मक । ता कहेहि, कहिं णिमित्ते इमो आरम्भो त्ति<sup>(३)</sup> ?

कल । एवं किल भट्टिणी मण्डइ । सुकुमारस्स अङ्गस्स  
सुकुमारं ज्जेव्व शोबच्छं अहिअं सोहइ त्ति<sup>(४)</sup> ।

मक । (सम्भ्रमङ्गम्) सो इमो अइसरिअज्जवन्ताणं कीला-  
प्पआरो<sup>(५)</sup> !

कल । एवं जं भणसि<sup>(६)</sup> ।

मक । (सासूयमिव) जइ सुकुमारस्स अङ्गस्स सुकुम-  
शोबच्छं अहिअं सोहइ, ता किं त्ति सुलहेसुं कुसुमेसुं  
रअणालङ्कारस्स लोआ सोअन्ति<sup>(७)</sup> ?

(१) अयि कलहंसिके, किमिति महार्हं रत्ननेपथ्यमतिक्रम्य कुसुम-  
नेपथ्ये भट्टिन्या कृतो बद्धमानः ? न खलु लोभस्तत्र कारणम् ?

(२) शान्तं पापं । तादृश्या महानुभावायाः कथमीदृशोलोभः सम्भवति ?

(३) तत्कथय, कस्मिन् निमित्ते अयमारम्भइति ?

(४) एवं किल भट्टिणी मन्यते । सुकुमारस्याङ्गस्य सुकुमारमेव नेपथ्यम-  
धिकं शोभते इति ।

(५) सोऽयमैश्वर्यवतां क्रीडाप्रकारः !

(६) एवं यद्गणसि ।

(७) यदि सुकुमारस्याङ्गस्य कुसुमनेपथ्यमधिकं शोभते, तत्किमिति सुल-  
भेषु कुसुमेषु रत्नालङ्काराय लोकाः शोचन्ति ?

कल । अहात्रो तत्य कालणं<sup>(१)</sup> ।

मक । किं जस्स जं णत्थि तस्स तत्य बहुमाणो<sup>(२)</sup> ?

कल । अधइं । किं ण पेक्खसि अन्धआरिदाए रत्तिए  
अप्पो वि दीवाल्लोत्रो बहु मणिज्जइ, ण उण दि  
अहे<sup>(३)</sup> ।

मक । अविवेत्रो क्वु विहाआरो<sup>(४)</sup> ।

कल । कथं विअ<sup>(५)</sup> ?

मक । जो जं बहुमस्सइ सो तं ण लहइ, जो उण  
लहइ ण तस्स तत्य बहुमाणो, जस्स इत्थं सं  
विहाणअं<sup>(६)</sup> ।

कल । (स्मितं कृत्वा) तुमं उण कथं इच्छसि<sup>(७)</sup> ?

मक । जइ धणवन्ताणं धणं दरिद्दाणं ताणं च दरिदत्तणं

(१) अभावस्तत्र कारणम् ।

(२) किं यस्य यन्नास्ति तस्य तत्र बज्जमानः ?

(३) अथ किं । किं न पश्यसि अन्धकारितायां रात्रौ अल्पोऽपि दीपालोको  
बज्ज मन्यते, न पुनर्दिवसे ।

(४) अविवेकः खलु विधाता ।

(५) कथमिव ?

(६) यो यद्वज्ज मन्यते स तन्न लभते, यः पुनर्लभते न तस्य तत्र बज्जमानः,  
यस्येत्यं संविधानकम् ।

(७) त्वं पुनः कथमिच्छसि ?



धणवन्ताणं होज्जउ, तद् सोहणं संविहाणञ्चं किदं  
होज्जउ<sup>(१)</sup> ।

कल । (विहस्य) तुमं दाव विहाआरस्स कज्जसइवो  
होहि । ओहीरिअभअप्फइबुद्धिप्पहाआ क्खु दे  
बुद्धी<sup>(२)</sup> ।

मक । अलाहि परिहासेण ? जइ अहं विहाआरस्स  
कज्जसइवो होज्जमु, तद् एरिसं अणुइअं संविहाणञ्चं  
णूणं असहेस्सं<sup>(३)</sup> ।

कल । जइ ण सहसि अलं कज्जसइवदाए, सअं ज्जेब्ब  
किं अस्साए ण समीहिदं करेसि<sup>(४)</sup> ।  
(नेपथ्ये गीयते) ।

लज्जअलिङ्गिअ सुरही चुंविअ सुमुखं वसन्तलच्छीए ।

मज्जणा समेइ सण्णिअं ललिअगर्द दाहिणो पअणो<sup>(५)</sup>॥

(१) यदि धनवतां धनं दरिद्राणां तेषाञ्च दरिद्रत्वं धनवतां भवेत्, तदा  
शोभनं संविधानकं कृतं भवेत् ।

(२) त्वं तावद्विधातुः कार्यसचिवो भव । अवधीरितवृहस्पतिबुद्धिप्रभावा  
खलु ते बुद्धिः ।

(३) अलं परिहासेन ? यद्यहं विधातुः कार्यसचिवो भवेयं, तदेदृशमनु-  
चितं संविधानकं नूनमन्यथयिष्ये ।

(४) यदि न सहसे, अलं कार्यसचिवतया ? स्वयमेव किमाज्ञया न समी-  
हितं करोषि ?

(५) लज्जालिङ्ग सुरभिः चुम्बित्वा सुमुखं वसन्तलक्ष्याः ।

मधुना समेति शनैर्ललितगतिर्दक्षिणः पवनः ॥

कल । (कर्णं दत्त्वा) अण, एसा अज्जसालंकाअणसहिअस्स

भत्तारस्स पावेसिई धुआ<sup>(१)</sup> ।

मक । हला कलहंसिण, कुदो दे इणमो पण्डिच्चं, जेण

दे कहा वि ण बुज्जीअदि<sup>(२)</sup> ।

कल । (सम्मितम्) कथं विअ<sup>(३)</sup> ?

मक । भणाहि दाव का एसा धुआ णाम<sup>(४)</sup> ?

कल । (स्मितं कृत्वा) धुआ णाम गीदिविसेसे णडुस्स

उबआरिणी, पत्तसूइआ कखु सा होइ<sup>(५)</sup> ।

मक । (विहस्य) ता गीदी त्ति भणाहि, किं कहेसि धुआ

धुआ त्ति<sup>(६)</sup> ।

(इति पुष्पावचयं नाटयतः । कलहंसिका स्मितं करोति) ।

कल । हला मअरन्दिण, अज्ज किल किम्पि अबुव्वं

पेक्खणअं भत्तारस्स पुरदो अहिणीहिइ त्ति सुणी-

(१) अये, एषा आर्यसालङ्कायनसहितस्य भर्तुः प्रावेशिकी ध्रुवा ।

(२) अयि कलहंसिके, कुतस्ते इदं पाण्डित्यं, येन ते कथाऽपि न बुध्यते ।

(३) कथमिव ?

(४) भण तावत्का एषा ध्रुवा नाम ?

(५) ध्रुवा नाम गीतिविशेषः नाट्यस्योपकारिणी । पात्रसूचिका खलु सा भवति ।

(६) तद्गीतिरिति भण, किं कथयसि ध्रुवा ध्रुवेति ।

अदि । ता सिग्घं सिग्घं कुसुमाइं ओचिणुहि,  
जेण अन्हे वि तहिं सामाजिआओ होस्साम<sup>(१)</sup> ।

मक । हला कलहंसिए, उणो वि पुच्छीअसि<sup>(२)</sup> ।

कल । पुच्छ वीसइं जं सि पुच्छिदुआमा<sup>(३)</sup> ।

मक । इमं पुच्छीअसि । किं पेक्खणअं णाम ? को वा  
तस्स अहिणओ ? किं वा तहिं सामाजिअ-  
त्तणं<sup>(४)</sup> ।

कल । अइ उज्जुए, तं पि ण जाणसि ? सुण, णडु  
विसेसो पेक्खणअं, अहिणओ उण अवत्याणु-  
आरो, जे क्वु एदं पेक्खन्ति ते सामाजिआ । जदो  
पेक्खीअदि, अदोज्जेव्व पेक्खणअं ति कही-  
अदि<sup>(५)</sup> ।

(१) अयि मकरन्दिके, अद्य किल किमप्यपूर्वं प्रेक्षणकं भर्तुः पुरतोऽभिने-  
ष्यते इति श्रूयते । तत् शीघ्रं शीघ्रं कुसुमान्यवचिनु, येनावामपि  
तत्र सामाजिके भविष्यावः ।

(२) अयि कलहंसिके, पुनरपि पृच्छसे ।

(३) पृच्छ विअब्बं यदसि प्रष्टुकामा ।

(४) इदं पृच्छसे । किं प्रेक्षणकं नाम ? को वा तस्य अभिनयः ? किं वा  
तत्र सामाजिकत्वम् ?

(५) अयि ऋजुके, तदपि न जानासि ? पृष्टु, नाद्यविशेषः प्रेक्षणकं,  
अभिनयः पुनरवस्थाऽनुकारः, ये खल्वेतत् पश्यन्ति ते सामाजिकाः ।  
यतः प्रेक्ष्यते, अतएव प्रेक्षणकमिति कथ्यते ।

मक । (सहर्षम्) ता पेक्खिद्व्वं क्वु इदं<sup>(१)</sup> । (इति पुष्पाण्यवचित्य  
निष्क्रान्ते) । (प्रवेशकः) ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टः सुधाकरः सालङ्कायनञ्च) ।

सुधा । ततस्ततः ?

साल । ततः सविनयमहमभ्यर्थितो भरतगोष्ठोगरि-  
ष्ठेन चन्द्रचूडेण ।

सुधा । किमिति ?

साल । किमप्यपूर्वं प्रेक्षणकमस्मिन्नार्यसुधाकरस्य  
विवाहमहोत्सवे प्रयोक्तुमुद्यतावयं, तदाज्ञया भर-  
तेष्वनुग्रहः क्रियतामिति ।

सुधा । अपि ज्ञायते कस्तस्य कवयिता ?

साल । ज्ञायते । तेनैव कथितं, मम यवीयसो भ्रातु-  
र्मिचं विष्णुशर्मा नाम इति ।

सुधा । स खलु नाव्यवेदनिपुणो विष्णुशर्मा ?

साल । अथ किम् ।

सुधा । नूनमपूर्वं भविष्यति । तेन हि समादिश्यन्तां  
भरताः, वर्णिकापरिग्रहः क्रियताम्-इति ।

साल । ननु समादिष्टाएव भरताः ।

सुधा । (क्षणान्तरे) वयस्य, यत्सत्यं इदानीमपि हर्षविषा-  
दयोर्व्यतिकरमनुभवामि । कुतः ?

(१) तत् प्रेक्षितयं खल्विदम् ।



अत्युच्चैर्भगवत्यनुग्रहवशाद्देवानुकृत्यात्तथा  
 सिद्धिः सद्यद्वातिनिर्वृतिकरी प्राप्ता मया कौमुदी ।  
 यत्सत्यं वपुषा समं मनसि मे नो भाति हर्षोदयः  
 शङ्का किन्तु दुनोति हन्त कुटिलात् कापालिकादुत्कटा ॥

साल । वयस्य, अलमात्मानं खेदयित्वा । दैवमस्मभ्यं  
 स्वस्ति करिष्यति । पश्य,

आपज्जालादपि सुमहतो दुर्विलङ्घ्य प्रकोपा-  
 द्वैवं तावत् प्रभवति परं रक्षितं रक्ष्यवस्तु ।  
 और्वीवह्निः किल जलनिघेस्तुङ्गतुङ्गैस्तरङ्गै-  
 र्याप्तो दारुव्यतिकरमृतेऽप्युज्वलं जाज्वलौति ॥

अपिच,

अपि व्यतिकरक्षिष्टः प्रवृद्धजलदावलेः ।  
 चन्द्रचन्द्रिकथोर्योगो स्नायते न तु लुप्यते ॥

नटः । (प्रविश्य) ।

यस्याः कटात्तमात्रेण विरूपाक्षोऽपि शिञ्जितः ।  
 विम्बाधररसार्थित्वं तां नमामि गिरौन्द्रजाम् ॥

सुधा । अष्टपदेयं नान्दी ।

नटः । तत्रभवतोविष्णुशर्मणः कृतिः कौमुदीपरिणयं  
 नाम प्रेक्षणकं प्रयोक्ष्यते, तत्र भवद्भिर्दीयमानमव-  
 धानमभ्यर्थये ।

सुधा । वयस्य, उभयथाऽप्येतदाप्यायनमस्माकम् ।

साल । एवं यदात्य ।

नटः । एतत्कविः किल,

शिरसा प्रणिपत्य सादरं

भवतः प्रार्थयते सभासदः ।

परिपश्यत भोः कृतिं नवां

सुकुमाराभिव पुष्करस्रजम् ॥

अस्मास्विदं प्रेक्षणकं निःक्षिपता च कविनेदमभि-  
हितम्,

दोषारोपकलङ्कितान्यवचसस्त्रिष्ठन्तु दुष्टाशयाः

सन्तः सन्त्यनृतैर्गुणैरपि परं प्रोत्साहयन्तो भुवि ।

गङ्गास्वच्छजलं करोत्यतितरां दुष्येयमक्षोनिधि-

र्गङ्गा नद्धलतोयमुत्तमरसं सन्पादयत्यागतम् ॥

( नेपथ्ये )

आः दुरात्मन्, अलीकवाचाल, भरतपुत्र, कथं  
व्यलीकवादिनः स्तुवन् पौरुषञ्च निन्दन् न लज्जसे ?  
महत् खल्वेतत् पौरुषं नाम, यदसताऽपि दोषेण  
परवचसस्तिरस्करणम् । शृणु रे, शृणु,

आरोप्य दोषमपदोषमपीह वाच्यं

कर्त्तुं क्षमो भवति सूक्ष्ममतिः क्षणेन ।

प्रत्येति जातु न खलु स्फुरतोऽपि दोषा-  
नन्धः पदार्थनिवहानिव मुग्धबुद्धिः ॥

अपिच । रे मूर्ख,

प्रसन्नमम्भोऽपि तटप्रपातः  
समाविलं यत्कुरुते क्षणेन ।  
तदस्य लोके महिमैव भूयान्  
प्रचीयते वेत्तु कएनमर्थम् ॥

(नटोनेपथ्याभिमुखमवलोकयति) ।

सुधा । कः पुनरेष धृष्टो यो निन्दितमपि महत् पौरुषं  
प्रत्येति ?

साल । नैतावता परिच्छेतुं शक्नोमि । उत्तरं तावत्  
प्रतीक्षस्व ।

नटः । (निरूप्य ससम्भ्रमम्) अये ! महाननर्थः समापतितः ।

अयं खलु,

सकरणइव दर्पो दृष्यमानोऽतिलक्ष्म्या  
नयपरिचयगर्वोऽन्यायमार्गैकनिष्ठः ।  
निवसतिरपि धाम्नां लोकसन्तापनानां  
प्रविशति वसुमित्रो मित्रवर्गैः समेतः ॥

तन्न युक्तमत्रावस्थातुम् । (इति निष्क्रान्तः) । (प्रस्तावना) ।

सुधा । वयस्य, नयप्रवीणोऽयं वसुमित्रइति श्रूयते ।

तत्कोऽयमस्य बुद्धिभ्रमः ?

सालं । वयस्य, स्वभावदुष्टाशयः खल्वसौ । तत् किमत्र  
चित्रम् । पश्य,

नैवात्मनो न च परस्य सुखोदयाय  
स्वभर्हितोऽपि खलु संश्रयदोषहेतोः ।  
दुष्टाशयस्य गुणराशिरपि प्रकामः  
क्लौवस्य रूपमिव निष्फलद्वयवैमि ॥

(ततः प्रविशति सदपं परिक्रामन् मित्रवर्गानुगतो वसुमित्रः) ।

वसु । (साटोपम्) दृष्टा युष्माभिर्घृष्टता भरतपुत्रस्य ?

(सम्भ्रमङ्गम्) किमाह भरतपुत्रः, असताऽपि दोषेण  
विशुद्धमपि वस्तु दूषयन् बुद्धिमतामग्रणीर्दुष्टाशयः,  
अलीकगुणेन स्तुवन् लघुचेताः पुनः साधुः ! (विहस्य) ।

(आरोग्य दोषमिति, प्रसन्नमम्भोऽपीति च पुनः पठित्वा) वयस्य,

कुम्भमुखं, कथं मन्यसे ?

कुम्भ । किमत्र मन्तव्यम् । त्वद्वचसामुपरि कोवक्तुं  
समर्थो मनुष्यलोके ?

दर्पसन्धः । (सक्रोधम्) किमुच्यते, मनुष्यलोके, इति । ननु

देवलोकेऽपि, इति भणितव्यम् ।

सुधा । (स्वगतम्) अहो गर्वप्रकारः !

कुम्भ । नात्र मम विप्रतिपत्तिः ।

वसु । (विहस्य) सर्व्वः खलु कोविदमात्मीयं मन्यते ।



(दम्भमयं विलोक्य) सखे, कथमिदं मौनव्रतम् ?  
दम्भ । किं करीअदु<sup>(१)</sup> ।

वसु । कथ्यतां यस्ते सर्गः ।

दम्भ । जइ मं पुच्छसि, तइ अलीअगुणेण तुअन्तस्स  
लहुचेदेा त्ति ण उण पज्जतं विसेसणम्<sup>(२)</sup> ।

वसु । कथं पुनः पर्याप्तं भवति ?

इतरौ । (सस्मितम्) नूनमधुना तिरस्कृतो बृहस्पतिर्भवि-  
ष्यति ।

दम्भ । (सगर्बम्) कथं णाम पज्जत्तं होहिइ । लहुचेदेा,  
भोलुओ, क्वहासओ, मुक्खो, वालिसो त्ति स-  
असो वि वुञ्जीअमाणं विसेसणं ण पज्जत्तं होइ<sup>(३)</sup> ।

(सर्वे हसन्ति) ।

वसु । साधु दम्भमय, साधु । स्थाने खलु मद्वयस्योऽसि ।

दम्भ । (इतरौ प्रति सगर्बम्) पेक्खह तिरक्किदेा भअप्फइ  
ण वा<sup>(४)</sup> ।

(१) किं क्रियताम् ?

(२) यदि मां पृच्छसि, तदा अलीकगुणेन स्तुवती लघुचेता इति न पुनः  
पर्याप्तं विशेषणम् ।

(३) कथं नाम पर्याप्तं भविष्यति । लघुचेताः, भीरुकाः, क्षुद्राशयः, मूर्खाः,  
वालिशः,—इति अतश्चोऽप्युच्यमानं विशेषणं न पर्याप्तं भवति ।

(४) पश्यतं तिरस्कृतो बृहस्पतिर्न वा ।

सुधा । (खगतम्) अहो धार्ष्यम् !

वसु । तिष्ठतु तावदेतत् । श्रुतं युष्माभिर्दैर्जन्यं पुण्य-  
कीर्त्तैः ? यः कौमुदीं याचमानमपि मां प्रत्याचष्टे ।

कुम्भ । श्रुतम् । किं क्रियताम् ? क्षुद्रः खल्वेषः ।

दर्प । (सगर्बम्) किमुच्यते, किं क्रियताम्,—इति ?  
ननु यदेव रोचते, तदेव क्रियताम् । कोऽत्र प्रती-  
पयिता ? राजमन्त्री खल्वेषः ।

दम्भ । रात्रा त्ति भणाहि । णाममत्तेण खलु रात्रा  
वीरआह्ण<sup>(१)</sup> ।

कुम्भ । सम्यगभिहितम् । किमन्यत्, निगृह्यैव पुण्यकीर्त्तिं  
कौमुदी ग्रहीतव्या ।

सुधा । अहो साहसरुचितां पापानाम् ।

वसु । नैतदतिपुष्कलं भवति ।

कुम्भ । कथमिव ?

वसु । अमुमर्थमाशङ्क्य तेन दुष्टवटुना महाराजो विज्ञा-  
पितः । स च तस्मै अभयं प्रतिश्रुत्य मामाज्ञप्तवान् ।

दर्प । किमिति ?

वसु । न खलु रक्षाधिकृतानां दोषमन्तरेण प्रजास्वप-  
कर्त्तुमुत्सहन्ते साहसिकाः । त्वन्तावदप्रमत्तो भव,

(१) राजेति भण । नाममात्रेण खलु राजा वीरवाहः ।

यथा न कोऽप्यार्यस्य पुण्यकोर्तेः किमप्यत्याहितं  
करोति,—इति । विपर्यये पुनर्नियतस्ते दण्डः ।  
सोऽयमादेशो देवस्य ।

कुम्भ । (सावज्ञम्) भवन्तमन्तरेण राज्ञः स्पन्दितुमपि  
नास्ति सामर्थ्यम् । कथं स एव त्वां दण्डयेत् ? अश्र-  
द्धेयमेतत् ।

दर्प । किं बहुना ? यद्यनुमन्यसे, नातिचिरान्निगृह्य  
वीरवाहुं त्वामेवाधिराज्यमारोपयामः ।

सुधा । धिक् दुर्जनानाम्, ये प्रभुमपि हन्तुमिच्छन्ति ।

वसु । (विचिन्त्य) मा मैवम् । अपि नाम,

परिभवकलुषाणां राजधान्यां महत्त्वं  
किमपि किमपि गूढं दुर्विलक्ष्यं समस्ति ।  
दहनद्रव तण्डैरप्याहतो भस्मगुप्तः  
क्षितिपतिरविरोधं तत्क्षणं दन्दहीति ॥

अपिच,

विपश्चितोनीतिकथासु दक्षाः

वीराश्च विद्रावितशत्रुपचाः ।

आज्ञाबिधेयाः किल यस्य सर्वे

सामान्यलोकेन स लोकनाथः ॥

सुधा । साधु वसुमित्र, साधु । स्वपदोचितमिदानीं  
मन्त्रितवानसि ।

कुम्भ । आः केयमलीकाशङ्का ? हस्त्यश्वरथपादातं सर्व्व-  
मेव बलं तवाधीनम् । अनिच्छाप्रतिरुद्धानि नः  
श्रेयांसि ।

दम्भ । सोहृणं मन्तेइ कुम्भमुहो<sup>(१)</sup> ।

वसु । (निःश्वस्य) वयस्य, न जानासि राजकुलवृत्तान्तं,  
येनैवं भणसि । सर्व्वमेव तन्त्रमाकुलीभूतम् ।  
न खल्विदानीं पूर्व्वमिव मथ्यनुरागो देवस्य । स  
खलु स्वयमेव तन्त्रमालोचयति ।

दर्प । कः पुनरुपायो भवेत् ? न खलु कौमुदीमन्त-  
रेण शक्यसि जीवितमवलम्बितुम् ।

वसु । एवं यदात्य । उपायं पुनर्न पश्यामि ।

दम्भ । (विहस्य) भो वअस्स, जइ एव्वं, जोअं अलंवेहि<sup>(२)</sup> ।

वसु । (सहर्षम्) सम्यक् स्मारितोऽस्मि ।

कुम्भ । किमिति ?

वसु । योऽसौ योगसिद्धः खण्डमुण्डोनाम कापालिकः,  
विदितप्रभावेऽवारितव्यवसायश्चासौ देवस्य । तेनैव  
तावत् समीहितं करिष्ये । अस्ति च तस्य अस्मासु  
पक्षपातः ।

(१) शोभनं मन्त्रयते कुम्भमुखः ।

(२) भो वयस्य, यद्येवं, योगमवलम्बस्व ।



दम्भ । अवाहदं मन्तं एदं<sup>(१)</sup> ।

इतरौ । अहो बुद्धिकौशलं वयस्यस्य ।

वसु । तदाकार्यतां तपोनिधिः ।

सुधा । धिक् पाषण्डानाम् ।

दम्भ । णं आआरिदो ज्जेव्व सो भवदा रणो वस्सदा-  
मुप्पादेदुम्<sup>(२)</sup> ।

वसु । आं स्मृतम् । अपसर्पः खलु मयैव प्रेषितः ।  
पर्याकुलत्वात्तु चेतसो न पुनरनुस्मृतम् ।

(नेपथ्ये)

परस्त्रीभिः सार्द्धं परिचितकलाभिर्युवतिभिः

सुराभिर्मांसैर्वा सरसमधुरैर्मीनशकलैः ।

समुद्रा चोपास्तिः फलमपि च मोक्षो न चिरतो-

ध्रुवं कौलोधर्मो जयति किल शम्भोरभिमतः ॥

वसु । (सहर्षम्) अयमुपस्थितो भगवान् कापालिकः ।

आसनमासनमत्रभवतः ।

सुधा । अहो वीभत्सा वाचायुक्तिः ।

(प्रविश्य आसनं स्थापयित्वा निष्क्रान्तः परिजनः) ।

(ततः प्रविशति कापालिकः । सर्वे उत्तिष्ठन्ति) ।

(१) अव्याहृतं मन्त्रमेतत् ।

(२) नन्वाकारितएव स भवतां राज्ञोवश्यतामुत्पादयितुम् ।

वसु । भगवन्नमस्ते (इति प्रणम्य) इदमासनमास्यताम् ।

(इत्यासनं दर्शयति । सर्वे प्रणमन्ति) ।

कापा । (उपविश्य)

आलिङ्गितः पुलकिताञ्चितया संलीलं

लङ्केश्वरव्यतिकरादचलेन्द्रपुत्र्या ।

साचीकृताननमनल्पविलासजालं

निर्वाणवानवतु वो नवचन्द्रमौलिः ॥

यूयमप्युपविशत ।

(सर्वे उपविशन्ति) ।

कापा । किमर्थं पुनरहमाहूतः ?

वसु । भगवतश्चरणवन्दनेनात्मानं कृतार्थीकर्तुम् ।

कापा । (स्मितं कृत्वा) अर्लं प्रश्नयेण ? कथ्यतामर्थः ।

वसु । नन्वेष शिरसा प्रणिपत्य विज्ञापयामि । रक्षणीयः

खलु शिष्यजनो गुरुभिरित्यस्ति नो विज्ञापनाऽव-

काशः ।

कापा । वत्स, अलमाशङ्क्य ? कथ्यतां, कुतोरक्षितव्य इति ।

कुम्भ । भगवन्, महतो व्यसनात् ।

कापा । (सविस्मयं वसुमित्रं प्रति) न खलु परिहासोऽयम् ?

वसु । (सविनयम्) भगवन्, न खलु परिहासः । यदाह

कुम्भमुखः ।

कापा । (सविषादम्) वत्स, तवापि व्यसनमिति यत्सत्यं  
विषीदति मे चेतः ।

वसु । जानाम्यनुग्रहं तपोनिधेः ।

कापा । कथ्यतां किं व्यसनमुपस्थितम् ?

दर्प । अपि श्रुतिमुपगतो भगवतो कौमुदीवृत्तान्तः ?

कापा । श्रुतोऽस्माभिः । किं तस्य ?

कुम्भ । प्रात्यख्यातः पुण्यकीर्तिना वयस्यः ।

कापा । कस्य हेतोः ?

कुम्भ । सुधाकराय तां दास्यतीति ।

कापा । (विहस्य) धिक् पुण्यकीर्तिम् । यो वसुमित्रमति-  
क्रम्य वटवे सुधाकराय कौमुदीं दातुमिच्छति ।

(विमृश्य) भवतु । यद्येवं, निगृह्य पुण्यकीर्तिं गृह्यता-  
मेषा ।

सुधा । अहो पापाभिसन्धिः ।

कुम्भ । राज्ञा चाभयन्तस्मै प्रतिश्रुतम् ।

काका । आः कण्ठ राजा नाम वसुमित्रस्याग्रे ?

दर्पः । (सहर्षम्) वयमप्येवं कथयामः । विप्रतिपन्नः खल्वत्र  
वयस्यः ।

कापा । (वसुमित्रं प्रति) वत्स, किं सुहृद्वाक्येषु विप्रतिघ्ने ?

वसु । भगवन्, अन्यदपि श्रोतव्यमस्ति ।

कापा । कथ्यताम् ।

वसु । (कर्णे एवमेवम्) ।

कापा । (विचिन्त्य) तर्हि त्यज्यतामयं प्रणयः ।

वसु । भगवन, अशक्यः खल्वेष त्यक्तुम् ।

कापा । कथमिच्छसि ?

कुम्भ । (कर्णे एवमेवम्) ।

कापा । (वसुमित्रं प्रति) त्वमपि चिन्तय । (खगतम्) एवं ममाभिलाषो न सिध्यति । अनुवर्तनीयश्च राज-मन्त्री वसुमित्रः । अथवा, किमिदानीं वसुमित्र-स्यानुवर्तनेन । यथाऽयं भणति, तथा तर्कयामि भ्रष्ट-प्रायोऽस्याधिकारः,—इति । (विभाव्य) को दैवस्याभि-प्रायमवगच्छतु । एवमिदानीमुपेक्षितोऽयं यदि स्वाधिकारएव तिष्ठेत्, कष्टमस्मानापतिष्यति । भवतु । अनुवर्तनीयोऽस्य च्छन्दः । अपिच । एव-मपि दुष्टवटोः सुधाकरस्यापकृतं भवति । महत् खल्वेतत्परितोषस्थानम् । तथाहि,

स्वार्थाविरोधेन परस्य साक्षा-

दनिष्टपातो यदि तन्महत्त्वम् ।

अशक्यतायामुभयोर्महान्तो-

वाञ्छन्ति शत्रोरपकारमेव ॥



अपकारो न कर्त्तव्यः शत्रोरपि कदाचन ।

अयं कापुषैरेव प्रवादो वज्र मन्यते ॥

वसु । चिन्तितमस्माभिः । भगवतः करुणा चेदयमेव  
तावत् सुकरः पन्थाः ।

कापा । यद्येवं, त्यज्यतां विषादः । यतिष्ये भवतः समी-  
हितसिद्धये ।

वसु । अनुगृहीतोऽस्मि ।

कापा । (सगर्व्वम्) वत्स, अलं बहु विकृत्य । कथयामि  
ते भूतार्थम् ।

अचिरेणैव कालेन कौमुद्या योक्ष्यते वटुः ।

भवान् वृथापरिश्रान्तः केवलं परितप्यते ॥

(सर्व्वे विषमाः स्थिताः) ।

सुधा । वयस्य, सुष्ठु खल्विदमुच्यते, दैवप्रेरितानि भव-  
न्ति वचांसि,—इति ।

साल । अथकिम् ।

एकमर्थं विवक्षुर्यदनीशदिव भाषते ।

अर्थमन्यमसामान्यं दैवस्यैतद्विजृम्भितम् ॥

अत्र तावदयमेव निदर्शनम् ।

वसु । (निःश्वस्य) असङ्गतमिव भगवतो वचनम् ।

कापा । (स्वगतम्) अहो प्रमादः ! कथं मुग्धेनेव मया एकं

वक्तुमिच्छता अन्यदेवोक्तम् । भवत्वेवं तावत् ।

(प्रकाशम्) वत्स, न खल्वसङ्गतम् । ननु ब्रवीमि,

अचिरेणैव कालेन कौमुद्या योच्यते भवान् ।

वटुर्दृथापरिश्रान्तः केवलं परितप्यते ॥

(इति तदेव व्यत्यस्य पठति) ।

(सर्वे हर्षं नाटयन्ति) ।

वसु । सङ्गतमिदानीम् ।

कापा (सगर्वम्) वत्स, किमनेन खल्वङ्गतेर्वचसः सङ्गता-

सङ्गतत्वविचारेण ? नन्वचिरादेव,

अभिनवपरिहासप्रौढरागालसाङ्गा

व्यतिकरमुपयान्या भीह्रियोर्मीलिताद्या ।

तरलभुजलतासंस्लिष्टकण्ठान्तरालं

विगणय निजमङ्गं सङ्गतं भोस्तथैव ॥

सुधा । आः पाप, अलीकवाचाल, एवं जल्पतस्ते कथं

शतधा न दीर्यते जिह्वा ?

वसु । किं दुष्करं भगवदनुग्रहेण ।

साल । (खगतम्) कथमन्यादृशइव दृश्यते वयस्यः ।

कापा । अयमहमिदानीम्,

आक्रन्दिताश्रुजलसिक्तमुखेन्दुविम्बां

लङ्केश्वरो रघुपतेरिव धर्मपत्नीम् ।

तामाविलासकलुषामवशां हरिष्ये  
शक्नोति यः स खलु रक्षतु तत्सपत्नः ॥

(इत्युत्तिष्ठति । सर्वे प्रणमन्ति) ।

सुधा । (सकोपम्) अरे रे पाषण्ड,

राहोरिव कलां चान्द्रीं तां तन्वीमुपपुसुषोः ।  
यथा क्रान्तिविपर्यासः प्रतीपस्ते सुधाकरः ॥

(इत्युत्थातुमिच्छति) ।

कापा । एकं तावत् प्रत्युपकारमस्माकं करिष्यसि ।  
वसु । विधेयोऽस्मि भगवतः ।

(कापालिकः परिक्रम्य निष्क्रान्तः । सुधाकर उत्तिष्ठति) ।

साल । (सुधाकरं निवार्य) वयस्य, कोऽयमस्थाने संरम्भः ?  
ननु प्रेक्षणकमिदम् ।

सुधा । (प्रकृतिस्यः सलज्जम्) कथं प्रेक्षणकमिदम् ! मया  
पुनर्ज्ञातं सत्यमेव प्रियामपहर्तुं पापानामारम्भः  
इति ।

साल । विमृशतु तावद्भिनयचातुर्यं भरतानाम् ।

सुधा । नूनमतीत्य वचसां विषयं वर्त्तते ।

वसु । अपिनाम कृतार्थः कापालिको भवेत् ?

कुम्भ । कः संशयः ?

दम्भ । मा संसञ्चं करेहि । अविद्वन्तणिज्जप्पहाओ  
 क्वु जेआआरो सुणीअदी<sup>(१)</sup> ।

कुम्भ । अलमनेन क्लैव्येन ? गर्वभूयांसः खलु सत्-  
 पुरुषा भवन्ति ।

वसु । (स्मितं कृत्वा) एवं यदात्य । कौमुदी परमस्मान्  
 व्यथयति ।

कुम्भ । अचिरात् सुखयिष्यति ।

दर्प । सत्यवचनो भव ।

कुम्भ । किमिदानीं सत्यवचनो भविष्यामि ? ब्राह्मण-  
 जातिः खल्वहम् । यदुत्पन्नेन भृगुना पुरुषोत्तमवक्ष-  
 स्यपि कृतश्ररणप्रहारः, कुम्भोद्भवेन च मुनिना पीतः  
 पयानिधिः ।

वसु । (सस्मितम्) गृहीतं ब्राह्मणवचः ।

दम्भ । (विहस्य) सुरहुणीबाणम्यि किं ओसिसीअदि<sup>(२)</sup> ।

कुम्भ । (सक्रोधम्) किमलीकमिदमुपन्यस्यते ?

दम्भ । कथं अलीअं णाम ? जस्स तुमं अज्जवि पच्चक्खं  
 पमाणं<sup>(३)</sup> ।

(१) मा संशयं कुरु । अविचिन्तनीयप्रभावः खलु योगाचारः श्रूयते ।

(२) सुरधुनीपानमपि किमवशिष्यते ।

(३) कथमलीकं नाम ? यस्य त्वमद्यापि प्रत्यक्षं प्रमाणम् ।



कुम्भ । कथं महर्षीनपि न प्रमाणयसि ?

दम्भ । धी मुख ! जइ महस्सिणो पमाणं, कथं एत्ति-  
एण तुमम्पि णाम विअत्थेसि ? पअणअणअस्पद्-  
धाए पाराआरमुत्तिईस्सुणो उप्पददे वालआणरस्स  
कथं ण सुमरेसि<sup>(१)</sup> ?

कुम्भ । ननु रे पाषण्ड, वयस्यत्वात् सोढमेतावत् ।  
तदतः परं न सहिष्ये ।

दम्भ । ण क्खु बम्हतेएण मं भप्पसा कुण्हिसि<sup>(२)</sup> !

वसु । आः कोऽयमस्थाने कलहे भवतोः ?

कुम्भ । तिष्ठ रे तिष्ठ, न त्वां क्षमिष्ये ।

वसु । अलमलमात्मकलहेन ? निवर्त्तेतां भवन्तौ ।

(नेपथ्ये)

एकाकिनोपवनान्तलताविताने

द्राक् कौमुदीं भृशमतिप्रसभं जिघत्सुः ।

(सर्वे आकर्णयन्ति) ।

दप । नूनमिदं तत्रभवतः कापालिकस्य पौरुषं विजृ-  
म्भते ।

(१) धिङ्गूर्ख ! यदि महर्षयः प्रमाणं, कथमेतावता त्वमपि नाम विक-  
त्यसे ? पवनतनयस्यर्द्धया पारावारमुत्तितीर्षोरुत्पततो वालवानरस्य  
कथं न स्मरसि ?

(२) न खलु ब्रह्मतेजसा मां भस्मसात् करिष्यसि ।

सुधाकरवसुमित्रौ । किमतः परं वक्ष्यति ?  
 दर्प । किमपरम् ? सिद्धमनोरथमात्मानमभिनन्दस्व ।  
 नखल्वृत्तार्थः कापालिको निवर्त्तिष्यते ।  
 कुम्भ । अलं सन्देहेन ? न खल्वन्वृतं मे वचनं भविष्यति ।

(पुनर्नेपथ्ये) ।

आश्चर्य्यमाश्चर्य्यम् !

कापालिकः प्रलयलङ्घितएष श्रेते  
 साऽप्यालयं गतवती विगतारिशङ्का ॥

(सर्वे विषम्नाः स्थिताः) ।

सुधा । नूनमयं मुद्राप्रभावः ।

साल । कथमन्यथा निर्निमित्तः प्रलयोदयः ?

दम्भ । तं एदं सच्चवाइत्तणं भवहे<sup>(१)</sup> ।

वसु । (निःश्वस्य) हा हतोऽस्मि मन्दभाग्यः ।

कुम्भ । अलं विषादेन ? वयमेव तां गृहीमः ।

वसु । चिन्त्यतां परिणामः । ननु प्रतीपो देवादेशः ।

कुम्भ । आः कोऽयं देवादेशोनाम ?

दर्प । (सगर्व्वम्) परिणामदर्शित्वं नाम कापुरुषत्वस्य  
 नामान्तरम् । नेदं भवादृशेषु सत्पुरुषेषु शोभते ।

(१) तदेतत् सत्यवादित्वं भवतः ।

कुम्भ । प्रथमः कल्पः । वीरपुरुषोचितं वचनं द्रुप-  
सन्धस्य ।

दम्भ । वीरा किल इत्थं ण वीहन्ति<sup>(१)</sup> ।

वसु । यद्येवं, कार्यसिद्धये प्रतिष्ठामहे ।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति) ।

(नेपथ्ये) ।

सुधाकरं प्रपन्नैषा गुरुणैवोपपादिता ।

अविघ्नं कौमुदीं साक्षादभिभूय तमः परम् ॥

वसु । (सक्रोधम्) अरे रे दुष्टवटो, मृगेन्द्रहस्तादाच्छिद्य

मृगीं ग्रहीतुमिच्छसि । नन्वेष न भवसि ।

एष त्वामग्रतोहत्वा प्रतिपत्ये मनस्विनीम् ।

अस्ताचलमनुप्राप्ते रवौ दीप्तिमिवानलः ॥

(इत्युद्धतं परिक्रामति) ।

दम्भ । भो वयस्य, ण क्वु गहीदुं इच्छइ<sup>(२)</sup> ।

वसु । किन्तर्हि ?

दम्भ । णं अगहीदेव्व<sup>(३)</sup> ।

(पुनर्नेपथ्ये) ।

कापालिकं यतिकुलैककलङ्कमुच्चै-

(१) वीराः किलेत्थं न विभ्यति ।

(२) भो वयस्य, न खलु ग्रहीतुमिच्छति ।

(३) नन्वग्रहीदेव ।

गर्वाविलक्ष्णं वसुमित्रममित्रलोकम् ।

आहत्य वामचरणेन गता स्वकान्तं

सा कौर्त्तिवासमिव गोपसुता गिरौशम् ॥

वसु । आः पाप, वृथा स्तुतिपाठक, नन्वयमहम्,

असुधाकरमापाद्य जगद्य न संशयः ।

ग्रहीष्ये कौमुदीं साक्षादक्षोभं प्रियसाहसः ॥

(सर्वे परिक्रामन्ति) ।

कुम्भ । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) । एहि तीक्ष्णदंष्ट्र, एहि ।

(ततः प्रविशति सुन्दरकः । सर्वे विस्मितास्तिष्ठन्ति) ।

वसु । (स्वगतम्) कथं सुन्दरकः !

सुन्द । जेदु जेदु अमच्चो<sup>(१)</sup> ।

वसु । सुन्दरक, किमागमनकारणम् ?

सुन्द । भट्टारअस्स अस्सत्तो<sup>(२)</sup> ।

वसु । (सहर्षम्) किं देवो मामाह्वयति ?

सुन्द । एण क्वु एण क्वु<sup>(३)</sup> ।

वसु । (साशङ्कम्) का तद्द्याज्ञप्तिः ?

सुन्द । इदं अस्सापत्तं अमच्चं गहीदत्थं कुणहिइ<sup>(४)</sup> ।

(इति पत्रमर्पयति) ।

(१) जयतु जयतु अमात्यः ।

(२) भट्टारकस्याज्ञप्तिः ।

(३) न खलु न खलु ।

(४) इदमाज्ञापत्रममात्यं गृहीतार्थं करिष्यति ।



वसु । (पत्रं गृहीत्वा वाचयति) परमेश्वरः समाज्ञापयति ।  
 विदितमेतद्युष्माकम्, आज्ञाभङ्गं न सहन्ते नरेन्द्राः  
 —इति । तथापि पैतृकस्त्वममात्यः—इति श्रान्तम-  
 स्माभिर्वहुशः । साम्प्रतं पुनरनेकशो निवार्यमाणो-  
 ऽप्यार्यपुण्यकीर्त्तिमधिकृत्य यमविनयमकार्षीः, नासौ  
 क्षन्तुमर्हः । राजपुरुषाणां विशेषतस्त्वमात्यानां  
 खल्वीदृशोऽविनयः सर्वमेव प्रकृतिमण्डलमाकुल-  
 यति । तदिदानीमप्यनुग्रहबुद्धौवास्माभिरादिश्यसे,  
 सकलद्रव्यमादायाविलम्बमितः प्रस्थीयताम् । श्वः  
 खल्ववसुमित्रं राष्ट्रमिच्छामि,—इति ।

(सर्वे विषम्नास्तिष्ठन्ति) ।

सुधा । (सविषादम्) हन्त हतोऽधिकारः !

साल । कुतः पुनरत्र विषादः ? उचितमेवैतत् ।

सुधा । (सकरुणम्) वयस्य, मा मैवम् ।

अधिकारपरिभ्रंशो मृत्युरेवाधिकारिणाम् ।

विशीर्यते पुष्पराशिर्मरुता हृतसौरभः ॥

साल । ननु मृत्युमप्यर्हत्येष वैधेयः ।

सुधा । अलमसद्भिनिवेशेन । आपन्नानुकम्पा हि  
 महाव्रतम् ।

सुन्द । सेणापई विस्सवेदि, सोग्धं अणुचिड्डीअदु भट्टार-  
आदेशो त्ति<sup>(१)</sup> ।

वसु । (स्वगतम्) का गतिः ? (प्रकाशम्) विज्ञाप्यतां सेना-  
पतिरेष देवादेशोऽनुष्ठीयते इति । अपिच, मदच-  
नाद्विज्ञापयितव्यस्त्वया देवः ।

वसुमित्रेण देवानामाज्ञैषा शिरसा धृता ।

क्षम्यतामपराधोऽयं प्रणयस्तस्य पश्चिमः ॥

सुन्द । जं अमच्चो अस्सवेदि<sup>(२)</sup> । (इति प्रणम्य निष्क्रान्तः) ।

वसु । (सनिर्वेदम्) ।

क्षणेन रङ्कोऽपि नृपत्वमेति

नृपोऽपि रङ्गत्वममार्ज्जनीयम् ।

हा धिक् क्षतान्तस्य विलाषमुच्चै-

स्तथापि न प्राणमृतां प्रबोधः ॥

तदेत, देवादेशमनुतिष्ठामः । (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्व्वे ।

(इति कौमुदीपरिणयो नाम गर्भाङ्कः) ।

सुधा । वयस्य, यत्सत्यमनेन वसुमित्रवृत्तान्तेन दुर्मना-  
यितोऽस्मि । स खलु,

अलभत न स्पृहनीयं भ्रष्टः स्वपदाद्विडम्बितोऽप्यभवत् ।

सांयात्रिक्रद्वव जलधौ निमग्नपोतोऽथ रक्षितो दैवात् ॥

(१) सेनापतिर्विज्ञापयति, शीघ्रमनुष्ठीयतां भट्टारकादेश इति ।

(२) यदमाय आज्ञापयति ।

साल । अलमपकारिणः करुणया । (नेपथ्याभिसुखमवलोक्य)

कः पुनरयमागच्छति ?

(ततः प्रविशति चेटी) ।

चेटी । (प्रणम्य) भट्टारक, क्षीरोदसरत्तीरगदा भट्टिणी  
विष्णवेदि, अज्जसालङ्काअरणं इह पेक्खिदुमि-  
च्छामि त्ति<sup>(१)</sup> ।

सुधा । रक्ष्यतां सखीप्रणयः ।

साल । एष रक्ष्यते । (इति चेष्ट्या सह निष्क्रान्तः) ।

सुधा । किमिदानीं करोमि । न च वसुमित्रवृत्तान्तो-  
पनतं दौर्म्मनस्यमपैति । (विचिन्त्य) भवतु । उपवन-  
शोभानिर्व्वर्णनेनैतदपनयिष्ये । (परिक्रम्य प्रवेशं रूप-  
यित्वाऽवलोक्य) अहो साम्प्रतमुपवनस्य रमणीयता !

विकसितकतिपयपुष्पं जलयन्त्रजलैर्निषिक्तमेतदभितः ।

मसृणज्योत्स्नाधौतं प्रविरलतारं गगनमिवाभाति ॥

(किञ्चिद्दूर्द्धमवलोक्य) कथमवसानभूयिष्ठो दिवसः ।

तथाहि,

(१) भट्टारक, क्षीरोदसरत्तीरगता भट्टिणी विज्ञापयति, आर्यसालङ्का-  
यनमिह द्रष्टुमिच्छामीति ।

ज्वलत्तेजोराशिः प्रलयमुपयास्यन्नचिरतः  
 पयोराशेः साक्षादुपरि विवशो लम्बितवपुः ।  
 प्रचण्डश्रृण्डांशुर्विरहविधुरोऽयं मृदुरभू-  
 न्नलिन्या न प्रायः स्फुरति परिखिन्नो गुरुरपि ॥

अपिच ।

व्यालम्बे कमलैकवान्धवदने स्नानेऽथ रक्तविषि  
 प्रेम्नेवोन्मथिते कथं कथमपि स्वैरं शनैर्गच्छति ।  
 सन्ध्यामारुतलालिताऽपि मधुपैर्गुञ्जङ्गिराश्वासिता  
 संप्रोष्यत्यतिकेव योषिदधुना स्नायत्यसौ पद्मिनी ॥

(ततः प्रविशति हृष्टः सालङ्कायनः) ।

साल । (सहर्षम्) वयस्य, दिष्ट्या वर्द्धसे । एषा खलु

महानुभावा प्रियसखी सुन्दरीं मह्यमर्पितवती ।

सुधा । (खगतम्) जानामि । (प्रकाशं सहर्षम्) निर्द्वतोऽस्मि ।

साल । यावदिममभ्युदयवृत्तान्तं अम्बायै निवेदयिष्ये ।

(इति निष्क्रान्तः) ।

सुधा । (परिक्रम्य) काममुपवनशोभामवलोकयतः प्रसी-  
 दति मे चेतः । इदं हि,

गन्धामोदितदिङ्मुखं कुसुमितैर्व्याप्तं सदा शाखिभि-  
 र्वल्वीभिर्नवपल्लवाभिरभितः पुष्पोद्गमाभिः श्रितम् ।

धारायन्त्वविमुक्ततोयकणिकाघर्मादविन्दुस्फुर-

लक्ष्मीभिः स्तवकस्तनाभिरभवत् स्थाने मनोवन्धनम् ॥



( अशोकतरुमवलोक्य ) कथममुना पुष्पमात्रपतत्रिणा  
ससुरासुरं जगद्वशीकरोति भगवान् मकरकेतनः ?  
(विभाव्य) अथवा, किमत्र चित्रम् ? अविचिन्तनीय-  
प्रभावः खल्वसौ । तथाहि,

अशोकः शोकाग्निं ज्वलयति वियोगाकुलहृदां  
शरत्वं पञ्चेषोरपि परिगतो वक्षसि कृतः ।  
प्रियासंयुक्तानां अयति पुनराकल्परचनां  
प्रतीपोऽयं लोके जयति महिमा पुष्पधनुषः ॥

(विलोक्य) कष्टमतिकरुणमग्रे वर्त्तते !

दुर्वारविरहक्लेशैः प्रत्यासन्नैर्विलोडितः ।  
आलपत्यवशः स्नेहाचक्रवाकः प्रियामसौ ॥

(अन्यतोऽवलोक्य) हन्त हन्त ललितमितोवर्त्तते ।

गाढमेषा समालिङ्ग्य व्रततिः कुसुमस्मिता ।  
द्विरेफकलझङ्कारैराभाषतइव प्रियम् ॥

(विचिन्त्य सकरुणम्) सर्व्वथा सुखपरिपन्थी कृतान्तः ।

कालेन खलु,

स्तवकस्तनरमणीयां प्रवालहस्तां सरागसुकुमाराम् ।  
अदयोऽनिलो हरिष्यति लतामिमां विटपिनोद्धन्त ॥

(विभाव्य) अप्रतिकार्य्यः खल्वयं प्रकारः । तत्किमनेन  
चिन्तितेन ? (निरूप्य सरिस्त्रयम्) कथमस्तमितएव

त्रिभुवनतलैकमणिप्रदीपे प्रचण्डातपे मार्त्तण्डे  
विजृम्भितमन्धकारैः । तथाहि,

तिरोहिते सहस्रांशौ तमःस्तोमो विजृम्भते ।  
दुस्त्यजो मलसंघातो मायाच्छन्नइवात्मनि ॥

(विभाव्य) आश्चर्य्यमाश्चर्य्यम् !

दूरस्थितानां तस्वल्गरीणा-  
मापाद्य साक्षादिव सन्निकर्षम् ।  
आराममध्येऽपि वनान्तशोभा-  
मारोपयत्येष किलान्धकारः ॥

अहो तीव्रकारित्वं दोषाणाम् !

ग्लपयति तिमिरालिर्यादृशं वस्तुजातम्  
न खलु न खलु तादृक् रञ्जयत्युष्णरश्मिः ।  
कद्व विधिविडम्बो मर्त्यलोकस्य योऽयं  
चिरमिव गुणलेशं दोषमाश्रभ्युपैति ॥

(विभाव्य) उचितमेवैतत् संविधानकम्, यत् खलु,

तामसं कर्मसन्तानं तन्वन्ति किल तामसाः ।  
सहसा साहसप्रायास्तमस्तेषां सहायकत् ॥

(दिशोऽवलोक्य) अलमतः परमिह स्थित्वा । तिमि-  
रितप्रायोऽयं प्रदेशः । तदुद्वसितमेव गच्छामः ।

(इति परिक्रामति) ।

(ततः प्रतिश्रुति सम्भ्रान्तः सालङ्कायनः) ।

साल । वयस्य, हता हता ।

सुधा । का ?

साल । सा ।

सुधा । कथ्यतां, का सा ?

साल । अलोकसामान्या ।

सुधा । कस्य ?

साल । भवतः ।

सुधा । (सविरागम्) आः कोऽयमद्य ते दारुणः परिहासः ?

साल । वयस्य, न खलु परिहासः । सत्यमेव । हता

साऽलोकसामान्या भवतः ।

सुधा । (सोद्वेगम्) केन ?

साल । तेन वैरिणा ।

सुधा । आः, प्रभिन्नाक्षरमभिधीयताम् । केन वैरिणा ?

साल । कापालिकेन ।

सुधा । हा प्रिये, कौमुदि, कवलिताऽसि क्रूरेण ।

(इति मोहमुपगतः) ।

साल । (ससम्भ्रमम्) वयस्य, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

सुधा । (समाश्वस्य) अलमतः परं समाश्वस्य ।

साल । शान्तं पापम् । न खलु तत्रभवतीं कौमुदी-

मधिकृत्य ब्रवीमि । किन्तु,—

हृता साऽलोकसामान्या भवतस्तेन वैरिणा ।

कापालिकेन मद्भ्रुस्ताद्वलान्मङ्गलमुद्रिका ॥

सुधा । (सामर्षम्) कथं पुनस्तां मुद्रामपहरन्नुपेक्षितः

कापालिकापसदो वयस्येन ?

साल । (सविषादम्) वयस्य, न पारितं मया तस्योपरोडुम् ।

सुधा । तेन हि मिलितावावां तं दुष्टमन्विष्यावः ।

साल । यथा रोचते वयस्याय ।

सुधा । असिरसिः ।

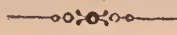
(प्रविश्य वज्जुलकोऽसिमर्षयित्वा निष्क्रान्तः) ।

सुधा । वयस्य, एहि, गच्छाव इदानीं कापालिकाविन-  
यस्य प्रतिकर्तुम् । (इत्यसिमादाय निष्क्रान्तौ) ।

इति कौमुदीसुधाकरे चतुर्थोऽङ्कः ॥



## पञ्चमोऽङ्कः ।



( ततः प्रविशति विषम्सः सालङ्कायनः ) ।

साल । (निःश्वस्य) । अहो प्रातिकूल्यं दैवस्य !

तमिच्छपत्नं परिभूय यातः

सुधाकरश्चन्द्रिकया च योगम् ।

तस्याभिषङ्गं जनयन्नकाण्डे

तां काप्यनैषीच्च घनोदुरन्तः ॥

ह्यः किल प्रदेशे ललितोद्यानसुषमाऽवलोकनकुतू-  
हलोद्दीपितान्तरा एकाकिन्येव तत्रभवती कौमुदी  
तत्र गता । यावद्गृहीतार्थः परिजनस्तामनुसरन्नु-  
द्यानपरिसरं प्राप्तस्तावदसौ कुतोऽप्यन्तर्हिता । अतः  
परिजनोऽप्यनभिज्ञोवृत्तान्तस्य । प्रियायामनार्थ-  
कारी दुष्टः कापालिकोऽपि मयैव व्यापादितः । तत्  
किमत्र निमित्तमिति न खल्वधिगच्छामि । वयस्य-  
स्त्वनेन प्रत्यग्रशोकावेगेनोन्मादितइव इतः कौमुदी  
ततः कौमुदी कुतः कौमुदी,—इति जल्पन् अश्रुस्त्रा-  
वितवदनकमलः कथं कथमपि धारयति जीवि-  
तम् । यथा च तस्य मनसोविकारस्तथा प्रेक्षे, नून-

मप्रतिकार्योभविष्यति । सर्व्वथा भगवत्योद्देवताः  
स्वस्ति करिष्यन्ति । (विचिन्त्य) । कुतः पुनरत्रभवत्याः  
प्रवृत्तिमुपलप्स्ये ।

(परिक्रम्य निःश्वस्य) ।

अयमपरः श्लोपदस्योपरि विष्फोटकोद्भेदः, यत्त-  
त्रभवत्या विप्रयोगेणातिमात्रमाकुलिता प्रियतमा  
मे सुन्दरी ।

तथाहि,

व्याहृताऽपि मधुरं न भाषते  
सान्त्विता न च धृतिं प्रपद्यते ।  
गाढमश्रुसलिलैः परिप्लुता  
सा दुनोति हृदयं दिवानिशम् ॥

अपि च ।

प्रत्यग्रशोकाश्रुभिरुद्भवद्भिः  
परिस्फुरत्स्मरमुखं प्रियायाः ।  
हिमप्रपातैः प्रथमैरिवाभूत्  
स्नानं समुत्फुल्लमिवारविन्दम् ॥

(विभाव्य निःश्वस्य च) ।

किमहमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः ?

किं सान्त्वयामि दयितामथवा वयस्य-  
मन्वेषयाम्युत सखीं सुलभयलीकाम् ।

इत्याकुलं न खलु शान्तिमुपैति सत्यं  
लौनं नु कच्छनिवहैर्मथितं नु चेतः ॥

भवतु, प्रियतमामाश्वास्य प्रियवयस्यं सम्भावयामि ।

( निष्क्रान्तः । विष्कम्भकः । )

( नेपथ्ये सुधाकरस्य प्रावेशिकी ध्रुवा । )

ददत्राविरहाउलित्रो पच्चगोबणत्रसोत्रवित्रलमणो ।

पित्रत्रमं अस्सेन्तो मिलाणकन्ती परिभ्रमद्(१) ॥

( ततः प्रविश्यन्मादावस्यः सुधाकरः ) ।

सुधा । प्राप्तयं श्मशानभूमिः । ( विलोक्य ) अहो रौद्रता  
श्मशानंवाटस्य । अयं हि,

व्याकौर्णैः केशपाशैरधिकतरमिलद्रूक्षतैर्दुनिरीक्ष्यः

कङ्कालैः शङ्खशुभ्रैरविकलसकलैर्भयसाऽप्यभ्युपेतः ।

काष्ठैरर्द्धावदग्धैर्मृतचरणशिरःपाणिमथ्यैः शरीरै-

रङ्गारैश्चापि भीमः कुणपशयनकैः सम्परीतश्चिताभिः ॥

अपिचात्र,

ज्वालामालावलीढत्रिदशपुरवधूवस्तखण्डः प्रचण्डो-

मेदोमज्जास्थिधातुप्रचुरपरिचयस्तुङ्गमापिङ्गलाभः ।

(१) दयिताविरहाकुलितः प्रत्ययोपनतश्लोकविकलमनाः ।

प्रियतमामन्वेषयन् स्नानकान्तिः परिभ्रमति ॥

घोरारावश्चिताभ्योज्वलति परिमिलत्सप्तजिह्वाकरालो-  
वक्त्रिर्गर्वं शरीरेष्वखिलमसुमृतां दर्शयिष्यन्नसारम् ॥

स्थाने खलु श्मशानं वैराग्यस्थानमुपदिशन्ति । लो-  
कानां खलु,

अर्द्धावदग्धविकटास्यशरीरघोरा-

भूयः क्षरद्वज्जलतैलवशाऽक्तमांसाः ।

विस्तारितोरुदशना मदगर्व्वमुच्चै-

रेते चितानलगताः कुणपा हसन्ति ॥

( चर्चरिक्कया विचिन्त्य ) यदा कुणपा अपि हसन्ति, तदा  
वयमपि किं न हसामः ? ( उपविश्य ) भवतु हसामः ।

( अनन्तरे चर्चरी ) ।

चिउरप्पअरे पिअकाणणए

परिदारुमए कुणवाट्ठिमए ।

समिदडुअलेअरओ मअओ

पुरिसे हसइ क्खु विअारमओ<sup>(१)</sup> ॥

( विहस्य । पुनश्चर्चरिक्कया विचिन्त्य ) अथवा न हसामि ।

( विहस्य । पुनः “चिउरप्पअरे”—इत्यादि पठित्वा ) ।

यावत्प्रणष्टां प्रियामस्मिन् श्मशानकान्तारे अन्वे-  
षयामि । ( इत्युत्थाय परिक्रामति ) ।

(१) चिकुरप्रकरे पिटकाननके परिदारुमये कुणपास्थिमये ।

सामिदग्धकलेवरकोमृतकः पुरुषान् हसति खलु विकारमयः ॥



( नेपथ्ये साट्टहासस्ताण्डवध्वनिः ) ।

( वामकेनावलोक्य ) अहो प्रमोदनिर्भरः पिशाचाङ्ग-  
नानाम् !

अन्तैः कल्पितभूरिवेशरचनाः कङ्कालमालाधरा-  
मेदोभिर्नितरां विलिप्तकरणा धाराङ्किताः शोणितैः ।  
दौर्घाङ्ग्योविकृताननाट्टहमिता रूक्षालका दन्तुराः  
संशुष्काः पिशिताशनप्रमुदिता नृत्यन्ति भूताङ्गनाः ॥

( द्विपदिकया विलोक्य ) ।

हन्त हन्त ! अदर्शनीयं खल्वग्रे वर्तते । एते खलु  
पिशाचाः,

प्रेतादुत्कृत्य कृत्तिं प्रकटितदशनैः खण्डखण्डानि मांमा-  
न्यादायादाय जग्ध्वा स्रुतरसकृमियुक्पूतिगन्धीनि भूयः ।  
मस्तिष्कं द्राक् करोटीचषकपरिगतं काममापीय पश्चा-  
दाचुष्याचुष्य मज्जप्रचुरमिति मुञ्जश्चर्व्वयन्त्यस्थिसङ्गम् ॥

( चर्चरिकया प्रतिनिवृत्य ) ।

किमित्यस्याममेध्यभूमौ प्रियतमाऽन्विष्यते । ( विचिन्त्य  
सास्रम् ) । आं स्मृतम् । पापः खण्डमुण्डस्तामपहृत्य  
कदाचिदिहानयेत् ? स्थाने खलु श्मशानं साधन-  
स्थानं पापानाम् ।

( द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य ) ।

कथं न कुत्रापि प्रियतमा ! तत्कुतः खल्वस्याः प्रवृत्ति-  
मुपलप्स्ये ? (विभाष्य) पुनरपि कदाचित् पापया वृद्ध-  
तापस्या तुङ्गपर्वतं नीता भवेत् ? (सकरुणं विचिन्त्य) भव-  
तु, तत्रैव गच्छामि । (इति परिक्रामति) ।

(खण्डधारा) ।

विरहालिङ्गप्रमाणसत्रो  
पिअत्रमपेक्खणलालसत्रो ।  
बाहोदुम्भिरिद्विअत्रा  
गाहइ गहणं गइंदओ<sup>(१)</sup> ।

(चर्चरिकाया अवलोक्य) ।

अयं तुङ्गपर्वतः । यावदधिरोहामि । (इति नाञ्चेनाधि-  
रोहति) ।

(द्विपदिकाया दिशोऽवलोक्य) ।

दइआविरहाउलओ दुखालिङ्गअहिअत्रओ ।  
सरवरजले किलंतओ तम्मइ चक्खुआणओ<sup>(२)</sup> ॥

(सविषादम्) कथं न दृश्यते ! (सकरुणम्) ।

(१) विरहालीङ्गप्रमाणसकः प्रियतमाप्रेक्षणलालसकः ।

वाप्यदूनदृष्टिकः गाहते गहणं गजेन्द्रकः ॥

(२) दहिताविरहाकुलकः दुःखालीङ्गहृदयकः ।

सरोवरजले स्नान्तकः ताम्यति चक्रयुवकः ॥

प्रत्यूहं परिभूय नाम कथमप्यासादिता प्रेयसी  
सोढोनास्मि कृतान्तदुर्विलसितैस्तस्मात् सुखं निर्विश्रम् ।

(सास्रम्) ।

अन्योन्यं प्रणयस्तु नौ प्रतिपदं भूयोऽतिभूमिङ्गतः

कासौ मे दयिता क चाहमकृती हा हन्त कोऽयं विधिः ! ॥

(इति मूर्च्छितः पतति) ।

(पुनर्दिपदिकयोत्याय सविषादम्) ।

को नु खल्वयं प्रकारः ? (निःश्वस्य) ।

लब्धुं निर्वृतिमन्तरायरहितां प्रेम प्रियायां कृतं

हा कष्टं विरहो दहत्यतितरां विस्मर्यते तत् कथम् ?

आदातुं मणिमग्र्यसम्पदमहो मन्दोविलान्तं गतो-

दष्टस्तत्र भुजङ्गमेन विषमज्वालाकुलस्ताम्यति ॥

(विभाष्य) । सोऽयमस्मदीयानां भाग्यविपर्ययानां  
दारुणः परिणामः ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

विरज्जम्माउम्माहिअहडक्को

गरुअरपेम्भुगमिअसुदुक्खो ।

कसणइ विअ परिस्त्रीणमिअङ्को

दोसइ विअ दवहदणअरुक्खो<sup>(१)</sup> ॥

(१) विरहोन्मादोन्मथितहृदयः गुरुतरप्रेमोद्गमितसुदुःखः ।

कृष्णो इव परिच्छीणमृगाङ्गः दृश्यते इव दवहतनववृक्षः ॥

(विचिन्त्य) । सर्व्वथा भवितव्यताऽत्र बलवती । (विभाव्य)  
तत्किमेनामुपालष्ये ? (पुनश्चर्चरी) भवतु । उपालभे ।

(चर्चरिकयोपविष्य । जानुभ्यां स्थित्वा) ।

भगवति, भवितव्यते, मन्दभाग्ये मयि किमिदमकरु-  
णत्वं भवत्याः ?

(वामकेन चलित्वा । आकाशे) ।

किमाह भवती,—किं नैर्घृण्यमनुष्ठितम् ? —इति ।

(सकरुणम्) भगवति, यदि मे सौभाग्यं न सहसे, मा  
सहस्व । किमेवं मामतिमात्रं दुःखाकरोषि ?

(विचिन्त्य) अहो नैष्ठुर्य्यं भवितव्यतायाः !

कथम् ?—इति ।

कादम्बिनी यदिह कातरचातकाय

दत्ते न वारि सरसाऽपि न तत्र चित्रम् ।

दुःखं तदेतदमुमेकरसं मुञ्जर्यत्

सन्तर्ज्जयत्यलघुगर्ज्जिततीव्रशब्दैः ॥

(द्विपदिकयोत्याय) ।

अलमस्याः परव्यसनरुचेरुपालभेन ?

व्यसनमथ परेषां निर्व्यथं यो विधत्ते

न खलु न खलु तस्मात् खेदमाप्नोति किञ्चित् ।

स कुटिलमतिरेतत्कातरोक्त्याऽश्रुपातै—

र्ज्जति न करुणत्वं किन्तु भूयः प्रमोदम् ॥



तत्किमनया परव्यसनसन्तुष्टया ? यावत् प्रणष्टां  
प्रियतमामेवान्विष्यामि । (इति परिक्रामति) ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

कोपं मञ्जि मा करिहि दुरंते

णट्टा मज्ज मिअलोअणि कन्ते ।

परपुट्टा जह सुललिअसदा

विज्जूवणा विअ सुहलदा<sup>(१)</sup> ॥

(वाधां रूपयित्वा) ।

को नु खल्वयं सूचीव्यधैर्मां व्यथयति ? (चर्चरिकया  
विचिन्त्य) । आं ज्ञातम् । वसन्तसखो मलयानिलः  
परागवर्षैर्वाधते ।

(अञ्जलिं वध्वा) ।

भगवन्, दक्षिणपवन, साधु खल्विदं बन्धुद्वत्यमनु-  
ष्ठितम् । एतत्तु विज्ञापयामि,

जगत्प्राणो मम प्राणान् कथं व्यथयसि प्रभो ।

मन्दभाग्ये मयि तथा भूयः कथमदक्षिणः ॥

अथवा । भाग्यविपर्ययस्यायं प्रकारः, यत् शीत-  
लोऽप्युपचारः सन्तापयति ।

(१) कोपं मयि मा कुरु दुरन्तं नष्टा मम मृगलोचनी कान्ता ।

परपुष्टा यथा सुललितशब्दा विद्युद्वर्णा इव सुहृदिदा ॥

मम हि,

अन्तः सन्तप्यमानस्य स्निग्धवाह्यक्रिया वया ।

कोटरज्वलनसुष्ठतरोर्दृष्टिरिवोपरि ॥

भवतु । अभ्यर्थयाम्येनम् ।

हंहे मलयानिल,

त्वं सर्व्वगो भवसि नार्हसि तद्विहन्तुं

याच्ञामिमां विधिवशान्मम दूरबन्धोः ।

(आत्मानं निर्दिशन्) ।

निःश्वाससौरभविशेषितगात्रगन्धं

तस्या वहन् क्षणमिमां तनुमास्वजस्र ॥

कथं वाधतएव ! किमहमेकाकी करोमि ? (विभाष्य)

क्व नु पुनः सखा मे सालङ्कायनः ? न खलु दयित-  
तासमागमहर्षितेन स्मरति मे मन्दभाग्यस्य ?  
उपालभे तावदेनम् ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

विरहाउलओ परिवाउलओ

सहअरररहिओ मिअराअअओ ।

गहणे विविणे वेअ भमन्तो

तस्मद् णिअपिअअम सुमरन्तो<sup>(१)</sup> ॥

(१) विरहाकुलकः परिव्याकुलकः सहचररहितो मृगराजगतः ।

गहने विपिने एव भमन् ताम्यति निजप्रियतमां स्मरन् ॥

(आकाशे) ।

सखे,

स्मरसि किं ? दयिताधरमाधुरी-  
मधुकर, प्रणयस्यमिमं जनम् ।  
परिचयो न सतां प्रतिहन्यते  
न च मनो द्वितयग्रहणक्षमम् ॥

भो वञ्चस्स, आचरणे मद् लक्ष्मीञ्चिदि<sup>(१)</sup> । (इति नर्त्तित्वा) ।  
चर्चुरिकया पुनः “स्मरसि किं”—इति पठित्वा ।  
(विहस्य । पुनश्चर्चुरी) । पुनस्तदेव पठित्वा । (विभाष्य सकरुणं  
निःश्वस्य) अथवा । नाहमिदानीं वयस्ययोग्यो भवतः ।

कुतः ?

दयितासहितोऽद्य भवानमृताणवगाहमानदव तप्तः ।

प्रतिकूलविधेरधुना प्रियया नितरां वियुक्तोऽस्मि ॥

(इति मूर्च्छितः पतति) ।

(द्विपदिकयोत्याय सोद्देगम्) ।

हन्त हन्त ! दुष्टमात्रा पुनरप्यपक्रान्ता मे प्रियतमा ।

(विभाष्य) । नूनमिहैव वर्त्तते । अन्विष्यामि तावत् ।

(पदद्वयं पुरंत उपसृत्य) ।

(सवितर्कम्) । किमित्येवङ्गतमपि मामपहाय गता ? न

(१) भो वयस्य, आचरणेन मया लक्ष्यते ।

खलु क्रीडितमेतत् ? भवतु । उपालभे तावदेनाम् ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

कद् मञ्जि पित्रत्रम दिङ्गा णङ्गा ।

मित्रपद्मलोत्रणि वित्र परपुङ्गा<sup>(१)</sup> ॥

(आकाशे) ।

नयनान्तरिताऽपि सुन्दरि,

भवसि त्वं यदि निष्ठुरा सती ।

मनसस्तु परोक्षवृत्तितां

मम गन्तुं दयिते, न पार्थ्यसे ॥

(तेन नर्त्तित्वा । पुनश्चर्चरी । विहस्य ) । पुनर्नयनान्तरितेति  
पठित्वा । (विभाव्य सकरुणम्) । कथं प्रलयोपनतः स्वप्नो-  
ऽयं न पुनः परमार्थतः प्रियासमागमः ! (इति मूर्च्छति) ।

(उत्थायोपविश्य) ।

(सविषादम्) । किमत्र करणीयमिति न खल्वधिगच्छामि ।  
अहह, कथं प्रबोधोऽपि दुःखहेतुरस्तमित-  
भागधेयानाम् ! (विचिन्त्य) । अथवा । प्रतीपोविधिः  
सर्व्वं प्रतीपयति ।

(१) कुत्र मम प्रियतमा दृष्टा नष्टा ।

मृगपतिलोचनी इव परपुष्टा ॥



मम हि,

प्रलयोऽपि स्पृहनीयो यदि तत्र मृगेक्षणा विलोक्येत ।  
न पुनर्वियोगपरुषः प्राणेश्वर्याः प्रबोधोऽपि ॥

अपिच ।

अपनेयोऽपि प्रलयः स्नाध्यो दयितासमागमोपायः ।  
इति मे दग्धकृतान्तस्तमपि न सहते वतान्त्यभाग्यस्य ॥  
(इति सकरुणं विभाव्य) ।

(खुरकः) ।

पिअत्रमविओअविसूरणओ  
दइआविरहदुक्खाइअहिअओ ।  
अहिअवाङ्गममिलाणमुहओ  
मन्यरगइओ भमइ कुरङ्गओ<sup>(१)</sup> ॥

(खुरकानन्तरे चर्चरी) ।

मङ्गअरपरङ्गअमङ्गररुएहिं  
सुन्दरसिणिङ्कअवररुवेहिं ।  
दक्खिणपवणुवेत्तिअकिसलयअणिअरु  
कइ मज्जि णट्ठा पिअ लदा विअ मणोहरु<sup>(२)</sup> ॥

(१) प्रियतमावियोगविसूरणकः दयिताविरहदुःखार्दितहृदयः ।

अधिकवाष्पोद्गमम्लानमुखकः मन्यरगतिकोभ्रमति कुरङ्गकः ॥

(२) मधुकरपरभृतमधुररुतैः सुन्दरस्निग्धकवररूपैः ।

दक्षिणपवनेोद्वेक्षितकिसलयनिकरे कुत्र मम नष्टा प्रिया लतेव  
मनोहरा ॥

(विभाव्य । सास्रम्) । अहह !

दृष्टे यस्मिन् भवति करणं लुप्तवेद्यान्तरं द्राक्  
लोलं चतुर्यमपि सततं वीक्षितुं व्यग्रमास्ते ।  
चेतो यस्य स्मृतिमपि रसान्मन्यतेऽत्युत्सवं मे  
सोऽयं जातो वत नयनयोः प्रार्थनीयो जनोऽस्तम् ॥

(इति पुनर्मूर्च्छति) ।

(क्षणान्तरे संज्ञां लब्ध्वा) ।

(निःश्वस्य) । अहो मदीयानां दुरितानां दारुणः परि-  
णामः, यस्य प्रभावात् आप्यायनमपि व्यथ-  
यति !

(पाठस्यान्तरे भिन्नकः) ।

पिअवज्जिअओ विरहाउलओ  
परिदुक्खिअओ मिअराअमओ ।  
उअ दुस्मिअओ पिअपेअरओ  
अहिअं भमइ परिमुद्धमई<sup>(१)</sup> ॥

(द्विपदिक्रया परिक्रम्य) ।

कथमिति ?

प्रीतिर्यत्र प्रतिपदमहो निर्विशेषाऽप्यकाण्डे  
भावाविद्धा भ्रुकुटिरचना यत्र कोपं व्यनक्ति ।

(१) प्रियावर्जितकः विरहाकुलकः परिदुःखितकः मृगराजमतः ।

पश्य दूनकः प्रियाप्रेमरतः अधिकं भ्रमति परिमुग्धमतिः ॥

लोकातीतामृतमपि सदा यत्र विम्बाधरान्तः

प्रेम्नस्तस्मादहह मधुराद्दह्यते मेऽन्तरात्मा ! ॥

(सविषादम्) । अहह ! कथमिति ?

अल्पं यत्र ब्रजति गुरुतां वस्तु लक्ष्यप्रसादा

दृष्टिर्यत्रामृतरसपरिस्यन्दिनी यत्र गर्हा ।

अश्रून्मेषो ललितमधुरे प्रेम्नि तस्मिन्निमग्नो-

सुगधो दग्धैर्विधिविलासितैर्दूयते मेऽन्तरात्मा ॥

भवतु । अन्यस्मिन्नवकाशे प्रियामन्वेषयामि ।

(चर्चरि कथोत्थाय परिक्रम्य) ।

(निःश्वस्य) । अहो प्रकारो भाग्यविपर्ययस्य !

तडिदिव वपुरुच्चैः कम्पयत्येव भूयः

सृशति हृदयमेतन्मर्मजालानि चैव ।

विरह इह नितान्तं संप्रमाथी प्रियायाः

न खलु विधिवशान्ने चेतना तु व्यपैति ॥

(चर्चरी) ।

विरहविआरसुमहिअहिअअओ

वज्जविअवेअणविअलिअधीरओ ।

तम्मइ कुसुमप्पअरमणोहरू

दुम्मिअहिअओ अहिअं वनअरू<sup>(१)</sup> ॥

(१) विरहविकारसुमथितहृदयकः

वज्जविधवेदनाविगलितधैर्यकः ।

ताम्यति कुसुमप्रकरमनोहरे

दूतहृदयः अधिकां वनवरे ॥

(चर्चरिकाया विचिन्त्य) ।

अहह !

मुहुः क्लेशज्वालावलयविषमेऽस्मिन् कतिपये  
 प्रियाप्रेम्ना प्रायो जगति सुखिनो धन्यजनुषः ।  
 वयन्वेतेनैवोन्मथितमनसः क्लेशबहुलाः  
 ममैवोच्चैर्जन्मान्तरदुरितविस्फुज्जथुरयम् ॥

(इति सकरुणं विचिन्त्य । द्विपदिकया परिक्रम्योपविश्य) ।  
 (सविषादम्) ।

अकरुणविधिनाऽभूत् प्रेयसीविप्रयोगो-  
 दहतहृदयमिदानीं तद्ब्रुलीकक्रमेण ।  
 स्फुटति किमति नैतच्चेतना किं न याता  
 किमपरमिदमुच्चैर्वज्रसारं मनो मे ॥

अहो असम्यक् कारित्वं दैवस्य ! (पुनः सकरुणं अकरुण-  
 विधिनेति पठित्वा, पुनः साधिच्छेपं तदेव पठित्वा, निःश्वस्य) ।

अकरुणविधिजन्मा विप्रयोगः प्रियायाः  
 दहति हृदयमध्वा कूकुलोत्याग्निकल्पः ।  
 भवति यदि तदेतद्भस्ममात्रावशेषं  
 तदुचिततममुच्चैः स्यात् कृतान्तस्य कृत्यम् ॥  
 (इति विभाष्य द्विपदिकयोत्याय) ।

(खण्डधारा) ।

पिअअमविअोअजणिण्हिं पच्चग्गसुसंदावेहिं ।



अव्वो दुम्भिअमाणसओ वज्जइ गहणे दुक्खिअओ<sup>(१)</sup> ॥

(पदद्वयं पुरत उपसृत्य पुनरुपविश्य) ।

(निःश्वस्य) । हा प्रियतमे, क्व गताऽसि ? (सकरुणम्) ।

आसादिता सुरवधूरिव पुण्यपुञ्जैः

सम्याद्य कानिचिदहानि महोपभोगम् ।

भूपालमञ्चिरशनेव भृशप्रमत्तं

मां मन्दभाग्यमपहाय गता प्रिया मे ॥

(इति मूर्च्छितः पतति) ।

(उत्थायोपविश्य) ।

अथवा । विरहेऽपि मत्प्रियासम्बद्धः, इति नात्र मे  
द्वेषः ।

(उत्थाय परिक्रामति) ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

वज्जविअविअारविमइअहिअओ

गरुअरवेअणाक्खलिअधीरओ ।

कुसुमप्यअरुमाइअहिअओ

तम्मइ काणणए जुअणओ<sup>(२)</sup> ॥

(१) प्रियतमावियोगजनितैः प्रत्यग्रसुसन्तापैः ।

अहो दूनमानसकः त्रस्यति गहने दुःखितकः ॥

(२) वज्जविधविकारविमर्दितहृदयकः

गुरुतरवेदनास्खलितधैर्यकः ।

कुसुमप्रकरोन्मादितहृदयः

ताम्यति कानने युवकः ॥

पुनः, विरहोऽपि,—इति पठित्वा । (विभाव्य) तथाप्य-  
नुपक्रम्योऽयमातङ्कः ।

किमिति ?

तद्विप्रयोगजनितैः कुसुमेषुतापै-  
र्दाहोऽपि तत्कृतइति स्पृहनीयएव ।  
दुःखन्विदं मनसि मे विरहाग्नित्रे  
सा सर्वदा स्थितवती परितप्यते यत् ॥

(विचिन्त्य) वृथा खलु मया मनसः सन्तापवृद्धिः क्रियते ।  
यदा प्रियतमा मे मनस्येव निरन्तरं वर्तते, तदा  
किमित्यात्मनः खेदमुत्पादयामि ।

(चर्चरी) ।

मङ्गत्रमङ्गरविरुत्रमणोहरु  
धाराहरु वित्र सुचिङ्गरणित्ररु ।  
विञ्जुलिपीत्रलवणमणोहरु  
णट्टा पित्र वित्र मुद्गकणेरु<sup>(१)</sup> ॥

(विहस्य, यदा प्रियतमा, इत्यादि पुनः पठित्वा) ।

कथमिति ?

(१) मधुकरमधुरविरुतमनोहरा  
धाराधरवत्सुचिकुरनिकरा ।  
विद्युत्पीतवर्णमनोहरा  
नष्टा प्रिया इव सुग्धकरेणुः ॥

प्रकल्प्य लोकं मनसाऽपि तावत्  
 तस्याः स्वमात्मानमवैमि धन्यम् ।  
 चिन्ताऽप्यशक्तौ विहिता फलाय  
 प्राप्नोऽनुकल्पो मधुनो गुडोऽयम् ॥

(तेन चर्चरिक्तया नर्त्तित्वा । पुनः प्रकल्प्य, — इत्यादि पठित्वा । पुनश्च-  
 र्चरी । पुनर्नर्त्तित्वा । विहस्य । पुनस्तदेव पठित्वा) ।

(गलितकः ।)

(विचिन्त्य । सविषादम्) अथवा । असदृशं पुनरेतदुपन्यस्तं,  
 न खल्वेतदेवंविधम् । कुतः ?

साक्षात् यद्यपि दुर्लभः प्रियतमालोकोव्यलीकाद्विधे-  
 रन्तः किन्तु तथापि हन्त दयिता निर्व्वर्णते सर्व्वदा ।  
 तच्चिन्तोपनतोऽपि यो मम भवत्यानन्दसान्द्रोलय-  
 स्तस्मिन् केवलमात्मसाक्षिणि सुखे व्यर्थाः कवीनां गिरः ॥

अहो असदृशव्यवहारो मनसः ! यदिदमेवं गतमपि  
 प्रियासमागमं नाभिनन्दति । (विभाव्य) अथवा । नायं  
 मनसो दोषः । यतः,

हृदि स्थिता यद्यपि पद्मवक्त्रा  
 न पश्यतस्तां मम यस्तथापि ।  
 क्लेशो भवत्यल्पगिरां कवीनां  
 स्थाने निवृत्ताः खलु तत्र वाचः ॥

तत्कुतः पुनर्दयितां प्रेक्षिष्ये ? न खलु प्रवृत्त्युपलम्भो-

ऽपि सुलभ । (विचिन्त्य निःश्वस्य) वृथा खल्वस्मदीया-  
ऽन्तरात्मा क्लिश्यते ।

गतैव सा पद्मपलाशनेत्रा  
न नाम तस्याः पुनरागमोऽस्ति ।  
वृथैव सङ्कल्पशतं मनो मे  
तनोत्यभित्ताविव चित्रकर्म ॥

(इति मूर्च्छति) ।

(उत्थाय परिक्रम्यावलोक्य च) ।

कथमयमशोकतरुः ! (उद्वेगं रूपयित्वा) कथमशोकोऽपि  
शोकहेतुरस्मद्विधानाम् ! भवतु । विज्ञापयाम्येनम् ।  
(अञ्जलिं वद्धा) ।

भगवन्,

त्वं कामिलोकहृदयेशयशान्यकल्पं  
निःशोक, पुष्पधनुषः कुसुमास्त्रजालम् ।  
किं भोस्तनोषि बद्धशो नितराममोघं  
शोचन्ति यैर्विरहिणः प्रहृताश्चिरस्य ॥

शृणुमस्तावत्किमयं वक्ति । (इति दत्तकर्णस्तूष्णीं तिष्ठति) ।

(द्विपदिकया विलोक्य) ।

(सहर्षम्) हन्त हन्त व्यवसितं मे सफलं सम्बृत्तम् ।  
यथाऽयं पल्लवहस्तैर्मामाह्वयति, तथा तर्कयामि  
विदितोऽस्य प्रियोदन्तो भविष्यति । यावत्सम्भाव-  
याम्येनम् । (इति परिक्रामति) ।



(अनन्तरे चर्चरी) ।

किमलअहृत्यप्पअलणसण्णेहिं

मज्जरविहङ्गमउलविरुअगीएहिं ।

गन्धामोदूअवाउविणिव्वुददेहओ

एच्चइ मज्जस्सवइ इह कप्पअरुवरओ<sup>(१)</sup> ॥

(चर्चरिकयोपसृत्य । अञ्जलिं वद्धा) ।

भगवन्, अशोकतरो, कथय कथय,

कुसुमव्यतिरिक्तमायुधं

कुसुमेषोः प्रहरिष्यतोऽधुना ।

दयिता मम वामलोचना

यदि दृष्टा भवताऽत्र कौमुदी ॥

(द्विपदिकया निरूप्य) कथमयं व्याधूयोत्तमाङ्गं न दृष्टा,  
इत्याह !

(चर्चरी) ।

तुममाअक्खहि मइ कप्पअरु,

सा पइ दिट्ठा सुकसणच्चिअरु ।

वित्तारिअगरुथणजुअमज्जरु

अच्छर विअ परिपुरिसमणोहरु<sup>(२)</sup> ॥

(१) किसलयहस्तप्रचलनसंज्ञाभिः

मधुरविहङ्गमकुलविरुतगोतैः ।

गन्धामोदितवायुविनिर्गतदेहकः

नृत्यति मधूत्सवे इह कल्पतरुवरकः ॥

(२) त्वमाचक्ष्व मां कल्पतरो, सा त्वया दृष्टा सुकृष्णचिकुरा !

विस्तारितगुरुस्तनयुगमधुरा अप्सरस इव, परिपुरुषमनोहरा ॥

(उपविश्य चर्चरिकया विचिन्त्य, सरोषम्) ।

अरे रे रुक्खञ्च, किं गोवाञ्चसि<sup>(१)</sup> ?

(इति नर्त्तित्वा उत्थाय) ।

यदि तावत्,

चरणप्रहारमस्था नूपुरशिञ्जितमनोहरं नापः ।

स्कन्धात्प्रभृति कथन्ते रुचिराणि लसन्ति पुष्पाणि ॥

फलअणुसारे मद् जाणिज्जइ<sup>(२)</sup> ।

(चर्चरिकया पुनः चरणप्रहारम्—इति पठित्वा) ।

कथयाशोक, कान्ता मे कुचास्ति ? कुसुमोद्गमः ।

तदङ्घ्रिताङ्गनाज्जातः, वथानिहोतुमिच्छसि ॥

(पुनश्चर्चरी) ।

सा मज्ज पिअअम तरुवरअ पइ ।

कुङ्कमवणा दिट्ठा भणइ<sup>(३)</sup> ॥

(चर्चरिकयोपविश्य । कथयाशोकेति पुनः पठित्वा । पुनश्चर्चरी । पुनः सानुनयं, कथयाशोकेति पठित्वा, पुनः साधिच्छेपं, तदेव पठित्वा निरूप्य) ।

कथम्,

भूतार्थमप्यपलपन् तरुरेष सुदुःसहैः ।

हृद्गारैस्तर्जयित्वा मां पुष्पास्तैरभिवर्षति ! ॥

(१) अरे रे वृक्षक, किं गोपायसे ?

(२) फलानुसारेण मया ज्ञायते ।

(३) सा मम प्रियतमा तरुवरक, त्वया ।

कुङ्कमवर्णा दृष्टा भण ॥

सर्व्वथा मदीयस्य प्रतिकूलदैवस्यायं प्रकारः । याव-  
दन्यमवकाशं गमिष्यामि । (इत्युत्थाय परिक्रामति) ।

(द्विपदिकयाऽवलोक्य) ।

अये, अयमसौ मालतीपुष्पप्रणयी मधुकरस्तिष्ठति ।  
प्रक्ष्यामि तावदेनम् ।

(कुटिलिका) ।

णिअपिअअमविरहाउलओ ।

(मन्दघटी) ।

महुअरकोइलणिणाअवाउलओ<sup>(१)</sup> ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

मऊअर, मऊरकहापरपुट्टा

आअक्खहि मइ कइ पइ दिट्ठा ।

विञ्जुलिकन्तीपरिचोरिअआ

पिअअम वम्महविअअपडाआ<sup>(१)</sup> ॥

(वलन्तिकयोपख्ये अञ्जलिं वद्धा) ।

भगवन्, अपि नाम दृष्टा भवता प्रियतमा मे कौमु-  
दी ? शृणु तस्या उपलक्षणम् ।

(१) निजप्रियतमाविरहाकुलकः ।

मधुकरकोकिलनिनादय्याकुलकः ॥

(२) मधुकर, मधुरकथापरपुष्टा

आचक्ष्व मां कुत्र त्वया दृष्टा ।

विद्युत्कान्तिपरिचोरितका

प्रियतमा मन्मथविजयपताका ॥

मधुकर, मधुरखना वरोरुः

शशधरपङ्कजनिन्दिताननश्रीः ।

कुटिलचिकुरजालभूषिताङ्गी

जघनभरालसगामिनी प्रिया मे ॥

(तिर्य्यगवलोक्य भङ्गारमनुभूय च) ।

किमाह भवान्, कथमेवं प्रणयिनमपि त्वामुपेक्ष्य  
गता,—इति । (सकरुणम्) भगवन्, अस्ति ममाप्यत्र  
वितर्कः । न खलु निश्चयमधिगच्छामि ।

दयिता मयि बद्धमानसा

स्वयमेषा न गतेति तर्कये ।

न च हेतुरिहेक्ष्यते परो

न च कोपो मयि कोऽपि सुभ्रुवः ॥

(विलोक्य) कथमयमदत्त्वैव प्रतिवचनं मधुपाने प्रवृत्तः ।

सुष्ठु खल्विदमुच्यते,

स्वार्थपरो लोकोऽयं निजसुखमेव बद्ध मन्यते प्रायः ।

परदुःखद्रुतमनसो नितरां विरला महात्मानः ॥

भवतु । अन्यतो गच्छामि ।

(परिक्रम्यावलोक्य) ।

अयं शिलोच्चयप्राग्भारः । यावद्देनं प्रियाप्रवृत्त्यर्थ-  
मभ्यर्थये । न पुनरयमुच्चैःशिरा मामवधीरयिष्यति ।

(जम्भलिका) ।



ददद्वाविरहाउलिअओ दुखालिदुअहिअओ ।

वाहेमिलाणवअणओ तम्मद वणे जुअणओ<sup>(१)</sup> ॥

अत्युन्नतत्वात् नूनमस्य दृग्गोचरं गता मे प्रियतमा ।

(अस्यानन्तरे अर्द्धद्विचतुरस्रकः) ।

गरुअरददद्वाविरज्जमाअविसेसो ।

एक्यो काणणए परितम्मद पेम्मवसो<sup>(२)</sup> ॥

(चतुरस्रकेणोपविश्य अञ्जलिं बद्धा) ।

याता दृग्गोचरं धीर, तव कान्ता वने मम ।

उद्वहन्ती मुखं स्नानं हिमक्लिष्टहिमांशुवत् ॥

(नेपथ्ये तथैव प्रतिशब्दः) ।

(श्रुत्वा सहर्षम्) कथं दृग्गोचरं यातेत्याह !

(अनन्तरे चर्चरी) ।

गिरिकाणणए कुसुमप्यअरे

पवणांदोलिअकिसलअणिअरे ।

आअक्खहि मद पद मज्ज कन्ती

दिट्ठी महिअरु, कम्मि भमन्ती<sup>(३)</sup> ॥

(१) दयिताविरहाकुलितकः दुःखालीढकहृदयकः ।

वाष्पस्नानवदनकः ताम्यति वने युवकः ॥

(२) गुरुतरदयिताविरहेान्मादविशेषः ।

एकः कानने परिताम्यति प्रेमवशः ॥

(३) गिरिकाननके कुसुमप्रकरे

पवनान्दोलितकिसलयनिकरे ।

आचक्ष्व मां त्वया मम कान्ता

दृष्ट्वा महीधर, कुत्र भमन्ती ॥

( सविनयम् ) ।

अपि निबद्धरतिं विधिपर्यया-

दकृतिनं न चिरेण विहाय माम् ।

कथय कुत्र मृगेक्षणलक्षणा

प्रियतमा वसतीह महीधर ॥

(नेपथ्ये तथैव प्रतिशब्दः) ।

(आकर्ण्य । विभाव्य । साखम्) ।

कथं ममैव प्रतिशब्देन प्रतारितोऽस्मि, न पुनरभ्यु-  
पपन्नः प्रत्युत्तरयता महीधरेण !

(इति मूर्च्छितः पतति । उत्थाय) ।

अहह, न कोऽप्यभिज्ञः प्रियावृत्तान्तस्य ! भवतु ।  
अन्यतः पश्यामि ।

(परिक्रम्य द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य) ।

अये, इयं परभृता चूतशाखामध्यास्ते । प्रक्ष्याम्येनाम् ।  
सम्भावयामि, स्त्रीत्वाद्भिज्ञैषा प्रियोदन्तस्य भवि-  
ष्यति ।

(खण्डिका) ।

कसणसिरी रअभूसिअओ पिअविरहविआरुसु ।

रखे धावद् वाउलओ दुहिओ पेच्छह कोल्लु<sup>(१)</sup> ॥

(चर्चरिकयोपलक्ष्य) ।

(१) कृष्णाश्रीः रजोभूषितकः प्रियाविरहविकारवान् ।

अरण्ये धावति व्याकुलकः दुःखितः पश्यत कोलः ॥

मञ्जुस्वना लमिव मे दयिता प्रणष्टा  
 राकासुधांशुवदना वत वेदिमध्या ।  
 अन्वेषयामि विवशो मृगलोचनौन्तां  
 कुत्र स्थिता परभृते, वद सा वरोरुः ॥

(अकर्ण्य) अये, इयं कुहूः कुहूरित्याह, । तर्कयामि,  
 दयापरवशैषा कुहूरजन्यामस्मिन् गिरिकान्तारे  
 भ्रमन्तं मां निवारयति ।

(वामकेनावलोक्य) ।

करुणवति, किमाह भवती,—कुहूरिति । (सविषादं  
 विहस्य) ।

नन्वभिमतैवाधुना कुहूरस्माकम् ।

(पादद्वयं पुरतउपहृत्य) ।

यदि दयसे, आदिश प्रियाप्रवृत्तिम् ।

कथमिति ?

दयिताविरहाकुलात्मनो-

न कुहूर्मे न हि निर्वृतिस्थली ।

उदितः शशलाञ्जनोऽधुना

ग्लपयत्युद्गमयन् प्रियासुखम् ॥

(आकर्ण्य, सविषादम्) ।

यथेयं कुहू कुहू इत्याह, तथा व्यक्तमियमप्यनभिज्ञा  
 प्रियोदन्तस्य । तत् किमेषा करोतु तपस्विनी ।

(अवलोक्य) अये, इयमतिक्रपावती प्रियोदन्तं वक्तुम-

क्षमा कातरेण चक्षुषा मामवलोकयति । भवति,  
अलं विषादेन । सुखमास्तां भवती । साधयाम-  
स्तावत् ।

(परिक्रम्योद्धमवलोक्य) ।

अहह, ललाटन्तपः सप्तसप्तिर्मां सन्तापयति । सुष्ठु  
खल्विदमुच्यते,—दुःखं दुःखमेवानुबध्नाति,—इति ।  
उपालभे तावदेनम् ।

(अञ्जलिं बद्धा) ।

भगवन्, सहस्रकिरण,

विरहानलदग्धं मां अग्निगर्भैर्गभस्तिभिः ।

भूयः किं दहसि, ? न्याय्या कातरे करुणा सताम् ॥

अथवा । अलं त्वामुपालभ्य ।

विरहानलदग्धस्य तत्प्रतापः कियान् मम ।

आशीविषप्रदष्टस्य वृश्चिकस्येव दंशनम् ॥

(विभाष्य) भवतु । यावदेनं प्रार्थयामि ।

(जानुभ्यां स्थित्वा अञ्जलिं बद्धा) ।

भगवन्, त्रिभुवनैकरत्नप्रदीप,

त्वां साक्षिणं परतरं समुदाहरन्ति

तत्त्वावबोधकुशलाः खलु लोकवृत्ते ।

आचक्ष्व मे सकललोकललामभूता

कास्तेऽधुना प्रियतमा तरलायताक्षी ॥



कथं तूष्णीमेवास्ते ! तिष्ठतु । किमनेन वृथा तेजा-  
गर्व्वितेन ? (इत्युत्थाय परिक्रामति) ।

(विलोक्य) इयमतिमुक्तलता सहकारप्रणयिनी वर्त्तते ।  
एनां प्रक्ष्यामि ।

(खण्डकः) ।

तुवरद गत्रपदवरत्रो पित्रत्रमपेक्षमुद्ध्रुओ ।

ददत्रापेक्वणलालसत्रो अहित्रं लंहित्रकाणणत्रो<sup>(१)</sup> ॥

(वलन्तिकयोपहृत्य) ।

भवति, लतिके, अपि नाम दृष्टा भवत्या तत्रभवती  
कौमुदी ?

(वामकेन किञ्चिदलित्वा । भ्रमरशब्दं सूचयित्वा) ।

किमाह भवती,—किमुपलक्षणं तस्याः, इति ।

भवति, श्रूयताम् ।

स्तवकस्तनरुचिरतरा भ्रमरावल्लिनीलिमचिकुरकलापा ।

अभिनवकिसलयहस्ता कुसुमस्रोरा त्वमिव हि दयिता मे ॥

(द्विपदिकयाऽवलोक्य, सविषादम्) ।

कथमियमपि न जानाति !

निक्षिप्रमकरन्दाश्रुर्धुनाना करपल्लवम् ।

यत्कमाह न वेद्मतीति क्रोशन्ती मधुपखनैः ॥

(१) त्वरते गजपतिवरकः प्रियतमाप्रेममुग्धकः ।

दयिताप्रेक्षणलालसकः अघिकं लङ्घितकाननकः ॥

यावदन्यतो गच्छामि ।

(परिक्रम्यावलोक्य) ।

अयमदूरे करिणीसहायः करी परिभ्रमति । याव-  
दस्मिन् प्रणयबन्धं करोमि ।

(कुटिलिका) ।

दुःखमहिअहिअत्राउलओ

(मन्दघटी) ।

पिअअमविरहअवज्जिअओ ।

(चर्चरी) ।

मिअपई पवणुव्वेस्सिअए

विहरइ विहलो काणणए<sup>(१)</sup> ॥

(दिलयानन्तरे चर्चरी) ।

अहिणअमेहसरिच्छा, खंभेरम कहेहि मइ ।

विज्जुप्पीअलवणा पिअअम दिट्ठा ए पइ<sup>(२)</sup> ॥

(जानुभ्यां स्थित्वा) ।

(१) दुःखमथितहृदयाकुलकः

प्रियतमाविरहकचस्तः ।

मृगपतिः पवनोद्धेस्लितके

विहरति विह्वलः काननके ॥

(२) अभिनवमेघसदृक्ष, स्तम्भेरम, कथय माम् ।

विद्युत्पीतवर्णा प्रियतमा दृष्ट्वा न त्वया ? ।

करेणुकायां करिनाथ, पश्चात्  
रंस्यस्यमुष्यां वशगा तवैषा ।  
मां तावदाश्वासय निःसहायं  
तिष्ठ क्षणं निष्ठुरतां स्म मा गाः ॥  
( विलोक्य सहर्षम् ) ।

अयमसौ मद्दिज्ञापनाकरुणमनाः सत्यमेव गमना-  
न्निवृत्तोगजपतिः । अन्यैव खल्वापन्नानुकम्पनरोति-  
र्महात्मनाम् । अभ्यर्थये तावदेनम् ।  
( जानुभ्यामुपविश्य कृताञ्जलिः ) ।

कथय यूथपते, कृपया मम  
यदि वने भवताऽत्र विलोकिता ।  
ननु वशापरिमन्थरगामिनी  
कनकरत्नरुचिर्नृगलोचनी ॥  
( चर्चुरिकया विलोक्य ) ।

अये ! यथाऽयं स्निग्धोत्फुल्लेन चक्षुषा मामवलोक-  
यति, तथा व्यक्तं विदितोऽस्य प्रियतमावृत्तान्तो-  
भविष्यति !

( द्विपदिकया निरूप्य ) ।

कथम् !

मन्द्रकण्ठरसितैर्मदधारा-  
व्याप्तगण्डसुषमारमणीयः ।  
श्रीकरेण करिणीं करिनाथो-  
लालयत्यतितरामनुरक्तः ॥

(जम्भलिका) ।

पेक्वहि दीहअवलाओ महाऊरिअदिसाओ ।

अभिअनिमित्तकाणणओ अहिवरिसेइ जलहरओ<sup>(१)</sup> ॥

क्षणं प्रणयसुखमनुभवतु । रुचयः खल्वनुरोड्व्या

महताम् । नूनं परतः प्रियोदन्तं कथयिष्यति ।

(इति सप्रत्याशं तूष्णीं स्थितः) ।

(तिर्य्यगवलोक्य सविषादम्) ।

कथमदत्त्वैव प्रतिवचनं प्रियया सममरण्याभ्यन्तरं

गन्तुं प्रवृत्तः ! उपालभे तावदेनम् ।

(पदद्वयं पुरतउपहृत्य) ।

हंहो गजपते,

दयिताविरहातिकातरं

समुपेक्ष्य च्युतभाग्यमद्य माम् ।

उचितं तव गन्तुमत्र नो

विरहं मा स्म गमस्तथापि भोः ॥

सुखमास्तां भवान् । (इति परिक्रामति) ।

(सहसोर्ध्वमवलोक्य, सहर्षम्) ।

हन्त हन्त ! प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।

नीलपटावृतदेहा प्रकटितमुखमात्रलक्ष्यमाणेयम् ।

दिवमुत्पतिता कान्ता पश्यति मां प्रेमतरलाक्षी ॥

(१) प्रेक्षस्व दीर्घकवलाकः शब्दापूरितदिक्ताः ।

अमृतनिषिक्तकाननकः अभिवर्षति जलधरकः ॥



(खण्डधारा) ।

पिअअमविरहविकारिअओ गरुदुखोन्मादअमणओ ।  
वाहविमोक्खणदुक्खिअओ धावइ गहणे वाउलओ<sup>(१)</sup> ॥

अहह !

नीलं निचोलखण्डं रत्नैः खचितं समुद्रहन्त्येषा ।  
वपुषैव सुप्रसन्ना शरदीव कलिन्दकन्यका कमलैः ॥

कथमद्यापि न मामुपसर्पति ! (सप्रणयकोपम्) उपा-  
लभे तावच्चिरकारिणीम् ।

(चर्चरिकाया ऊर्ध्वमुखमुपविश्याञ्जलिं बद्धा) ।

मम तावत्,

क्लेशं सुन्दरि, नैव वेत्सि नितरां मर्मस्पृशं दुःसहं  
विश्लेषात्तव यस्ततः प्रियतमे, मौनं समालम्बसे ।  
सम्प्राप्तोदयिते, त्वदेकरसतां सोऽयं जनो निष्ठुरे,  
आस्तां क्लेशविमोक्षणं कथमहो वाचाऽपि नालप्यते ! ॥

अथवा । न उपालभे । सुलभाभिमाना खलु स्त्री-  
जातिः । प्रसाद्याम्येनाम् ।

(खण्डिका) ।

(१) प्रियतमाविरहविकारितकः गरुदुःखोन्मादितमनस्कः ।

वाष्पविमोक्षणदुःखितकः धावति गहने व्याकुलकः ॥

कुसुमकिसलयभूषितत्ररणत्रो पित्रत्रमसोत्रसदुक्खो ।  
अन्तरप्पत्रडपावत्रत्रो लच्छीत्रदि वित्र रुक्खो<sup>(१)</sup> ॥

(खण्डिकान्तरे चर्चरी) ।

आगच्छहि पित्रत्रम, सुन्दरिए, तुह विरहे दुहिअस्स मज्ज णए ।  
किं कलुण्ढ कोवं कुण्डीअ मज्जि मिअलोअणि, तुमं पसिअ<sup>(२)</sup> ॥

(सकण्णम्) भवति,

मया दुःखात् किञ्चित्परुषमुदिते निष्ठुरधिया  
प्रिये, त्वञ्चेत्कुप्येः पुनरपि हतः स्यां विधिहतः ।  
किमन्यद्वा ब्रूमो विधुमुखि, तत्रैवास्मि नितरां  
न पारुष्यादज्जं त्यजति किल माला जलमुचाम् ॥

(अवलोक्य) कथमद्यापि न प्रसीदति ? भवतु । भूयः  
प्रसादयामि ।

सुतनु, प्रसीद तावत् प्रभवन्त्योऽपि च न खलु कुटुम्बिन्यः ।  
दयितेषु दीर्घरोषास्तदेकरसतां गतेषु स्युः ॥

(वामकेन बलित्वा आकाशे) ।

किमाह भवती,—किमेवं कातरोऽसि,—इति ।  
(सखेदम्) भवति, मम भाग्यविपर्ययादेतदपि न जा-

(१) कुसुमकिसलयभूषितकरणकः प्रियतमाशोकसदुःखः ।

अन्तरप्रकटपावकको लक्ष्यते इव वृक्षः ॥

(२) आगच्छ प्रियतमे, सुन्दरिके, तव विरहे दुःखितस्य मम बन्धा ।

किं कण्ठे कोपमकरोः मयि मृगलोचनि, त्वं प्रसीद ॥

नासि ! किं ब्रवीमि ? भवत्याएव विरहो मां विधुर-  
यति । शृणु प्रिये, शृणु ।

वाचस्ते श्रवणान्तरेऽमृतरसं सिञ्चन्त्यनल्पं मम  
ब्रह्मानन्दरसादपि प्रियतमे, स्पर्शस्तवाह्लादकः ।  
त्वं कर्पूरशलाकिकेव नितरामाप्यायनी चक्षुषो-  
र्विल्लेषस्तु तवापि यद्ब्रूथयति प्रायो न जानासि तत् ॥

(साग्रहम्) आगत्य जीवितं तावन्ममावलम्बस्व । पश्चात्  
सर्व्वं श्रोष्यसि सर्व्वं कथयिष्यामि ।

(पुनश्चर्चरी) ।

वाहजलाउलदुक्खिअवअणओ  
झीणगई पेक्खहि वाउलओ ।  
णिअकणेरुविओअदुक्खिअहिअओ  
तम्मइ गअपई भमिअविबिणओ<sup>(१)</sup> ॥

(आकाशे) ।

पुनः किमात्य,—कथमस्मद्विरहमात्रेणैवं कातरो-  
ऽसि,—इति । (सखेदम्) सुन्दरि, यदेवं मामात्य,  
व्यक्तमात्मानं न वेत्सि ।

कथमिति ?

समीपे स्थित्वा त्वं विधुमुखि, रसैराद्र्द्रहृदया

(१) वाष्पजलाकुलदुःखितवदनकः क्षीणगतिः प्रेक्षस्व व्याकुलकः ।

निजकरेणुवियोगदुःखितहृदयः ताम्यति गजपतिर्भूमितविपिनकः ॥

यदा प्रेम्णा स्निग्धाममृतमिव वाचं कथयसि ।  
 तदा वर्षं वर्षं प्रति हृदयमेतत् प्रियतमे,  
 मुदं यामाप्नोति त्वमसि किल नैतत्सुविदिता ॥

कथय, कथमेतद्विस्मर्यताम् ? अन्यच्च । भवति,

न मुग्धे, जानासि त्वमसि किल रत्नं निरूपमं  
 (आत्मानं निर्दिश्य) ।

जनोऽयं जानाति प्रचुरसुकृतैस्त्वत्परिचितः ।  
 उचितं खल्वेतत् ।

न रत्नं जानाति स्वमपि गुणजालं सुविपुलं  
 तदेतद्वेत्त्युच्चैः किमपि मणिकारो भिषगपि ॥

(आकाशे) ।

पुनः किमात्थ,—किमित्यात्मानं न नियमयसि,—  
 इति । (सखेदम्) भवति, सर्व्वथा अस्मदीयानां  
 भाग्यविपर्य्ययानामयं प्रभावः,—यत् त्वमपि नाम  
 एवं ब्रवीषि ! तथापि श्रूयतां भूतार्थः ।

प्रिये, प्रेम्णि प्रायस्तव मधुरवारांनिधिरसे  
 निमग्नं सन्तप्तं हृदयमिदमादौ त्वणमिव ।  
 रथादस्यैवैतद्भ्रमति न च शक्यं नियमनं  
 न चाकाङ्क्षे ध्यायाम्यपि न परिणामं विधुमुखि, ॥

(विलोक्य, सानन्दम्) ।



हन्त हन्त! चिरात्सम्पन्नो मे मनोरथः । एषा  
खलु मदनूनयप्रसन्ना प्रियतमा ममाभ्यर्णमभ्यागन्तुं  
प्रवृत्ता । प्रत्युन्नच्छाम्येनाम् ।

(खण्डधारा) ।

इदत्रापेक्षणलालसत्रो मिच्छापिअत्रमवम्चिअत्रो ।  
दुक्खाङ्गुलिअमाणसत्रो अहिअं तम्मद जुआणओ<sup>(१)</sup> ॥  
(ससम्भ्रममुत्थाय आकाशबद्धलक्ष्यो बाहू प्रसार्य) ।

एह्येहि तामरसकोमलसन्नताङ्गि,  
विम्बोष्ठि, चन्द्रमुखि, पीननितम्बविम्बे ।  
आलिङ्ग्य मे वरतनौ, विरहान्निदग्धा-  
न्यङ्गानि जीवथ पुनः करणामृतेन ॥

(चर्चरिकाया कतिपयपदं पुरत उपस्थत्य द्विपदिकाया निरूप्य । साखम्) ।

कथम् !

तरलितरुचस्तारा एता न रत्नपरम्पराः  
इदमपि नभो वैदुर्याभं न नीलनिचोलकम् ।  
अयमपि शशी पूर्णाभोगो मुखं न मृगीदृशः  
स्फुरति नितरामङ्कः सोऽयं न नाम विलोचनम् ॥  
पृषदश्वोपनीतस्य मेघस्य गतिपर्ययात् ।  
आयन्निवेन्दुराभाति नायाति मम कौमुदी ॥

(इति मूर्च्छितः पतति । पुनर्द्विपदिकयोत्थाय सविषादम्) ।

(१) दयिताप्रेक्षणलालसकः मिथ्याप्रियतमावधितकः ।  
दुःखाघूर्णितमानसकः अधिकं ताम्यति युवकः ॥

ज्ञातं मया प्रियतमा दिवमुत्पतिता निरीक्षते प्रेम्णा ।  
यावन्नीलविहायसि सकलशशधरः परिस्फुरति ॥

(इति सकरुणं विचिन्त्य) ।

अहह ! अतितरां परिश्रान्तोऽस्मि । यावदस्य छाया-  
तरोर्मूले क्षणं विश्राम्यामि ।

(परिक्रम्य तत्रोपविश्य, करतले कपोलं संस्थाप्य सखेदमात्मगतम्) ।

कण, सि सफलिअजम्भो

लोअण, जाआ तुह बि सफलदा व्व ।

मज्जरं सुणीअ वअणं

पेक्खीअ विमुद्धमाणणं से<sup>(१)</sup> ॥

(निःश्वस्य) ।

एतावदेव सुकृतं कथमप्यासौन्ममापि मन्दस्य ।

आमादिता वरोरुः कञ्चित्कालं यतो मयाऽप्येषा ॥

(इति विभाव्य । सहसोत्थाय) ।

क्व पुनर्मे प्रियतमा तिष्ठति ? (विचिन्त्य) भवतु । तदेव  
लतागृहमुपगम्य प्रियामन्वेषयामि, यत्र प्रागपि तत्र-  
भवती मया प्राप्ता । (परिक्रम्य । विलोक्य) इदमदूरे  
लतागृहं दृश्यते । (इति त्वरितं परिक्रामति) ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

(१) कर्ण, असि सफलितजन्मा लोचन, जाता तवापि सफलतैव ।

मधुरमश्रौषीर्वचनं अद्राक्षीर्विमुग्धमाननं तस्याः ॥

कुङ्कुमवर्ण सिणिङ्गकान्ती  
 विरहमिलाणा वेत्र रुञ्जन्ती ।  
 एत्य णु मज्ज परिचिट्ठदि कन्ती  
 गहणे विविणे क्खु परिभमन्ती<sup>(१)</sup> ॥  
 (चर्चरिक्कयोपसृत्य) ।

भगवन्, लतागृह,

कथयतु दयितोदन्तं तद्विरहपरिमथितस्य मेऽद्य भवान् ।  
 कुसुमसुकुमारगात्री सुतनुस्ते पूर्वदृष्टैव ॥  
 (द्विपदिकयाऽवलोक्य) ।

कथं तूष्णीमास्ते ! उपालभे तावदेनम् । भगवन्,  
 निकुञ्ज,

त्वत्तः प्राङ्गदिरेक्षणा प्रियतमा प्राप्ता मया कौमुदी  
 सा नष्टा पुनरप्यतस्त्वमधुनाऽप्यस्माभिरभ्यर्थ्यसे ।  
 कोऽयन्ते मतिविभ्रमोऽद्य शरणं प्राप्ते जने दुःखिते  
 आस्तां तावदनुग्रहे मधुरया वाचाऽपि नालप्यते ॥

कथमयं प्रत्युत्तरमप्रयच्छन्नवधीरयत्येव माम् !  
 (अञ्जलिं बद्धा) ।

अवधीरणामपीमां निकुञ्ज, तव मर्षये कुरङ्गाक्षीम् ।  
 तां मञ्जुलमुखकमलां पूर्वमिवाप्यसि चेद्भूयः ॥

(१) कुङ्कुमवर्णा स्निग्धककान्तिः विरहस्नानैव रुदती ।

अत्र नु मम परितिष्ठति कान्ता गहने विपिने खलु परिभमन्ती ॥

(चर्चरी) ।

दिट्टो पञ्चि मिअल्लोअणि तनुई

जहणभरालस थणभरगर्दई ।

वअनविनिन्दिअससहरकन्ती

दीहापाङ्गि लदाघर, कन्ती<sup>(१)</sup> ॥

(विभाय) ।

कथमयमारब्धमौनव्रतः साधुमिवात्मानं दर्शयति !

(सरोषम्) अरे रे निकुञ्ज, क्वेदानीं यास्यसि ?

प्रागेकवारमसि मे दयिताऽपहारी

स्यष्टं प्रिया न खलु सा पुनरेव नष्टा ।

तामर्पयाशु यदि काङ्क्षसि मङ्गलं खं

न क्षम्यते नृपतिभिः प्रथितो हि चौरः ॥

(पुनश्चर्चरी) ।

(चर्चरिकाया विलोक्य) कथमयमानमितपूर्वकायो मां

प्रणमति ! ( सरोषशिरःकम्पम् ) नाहं नाहं दयिताप-

हारिणं क्षमिष्ये । अथावश्यन्तवात्मनो रिरक्षिषा,

अलं प्रणतिविडम्बनाभिः ? श्रूयतामभिसन्धिः ।

(सविनयम्) ।

नितान्तं यच्छ मे कान्तां कुञ्ज, कुञ्जरगामिनीम् ।

(२) दृष्ट्वा त्वया मृगलोचनी तन्वी जघनभरालसा स्तनभरगुर्वी ।

वदनविनिन्दितशूश्रुधरकान्तिः दीर्घपाङ्गी लतागृह, कान्ता ॥



पश्चात् त्वामर्चयिष्यामि तद्भक्तकुसुमैरहम् ॥

(पतङ्गविक्रोशमाकर्ण्य सविधादम्) ।

यथाऽयं परिक्रोशति, व्यक्तमस्यापि न गोचरस्तत्र-  
भवत्या वृत्तान्तः । तत्कृतः पुनरत्रभवत्याः प्रवृत्ति-  
मागमयेयम् ।

(परिक्रम्यावलोक्य) ।

अये, अयमसौ कदम्बशाखानिषण्णः प्रियाऽनुगतः  
कपोतकस्तिष्ठति । सम्भावयाम्येनम्,

(चर्चरिकयोपसृत्याञ्जलिं बद्धा) ।

भगवन्, विहगोत्तम,

निरालम्बे मार्गे चरसि कणभक्षोऽसि नितरां

सदा तिष्ठस्युच्चैरुपरि मनुजानां कृतधियाम् ।

ध्रुवं सत्यक्षोऽसि प्रचुरवनिताप्रेमरसिकः

परं सान्द्रानन्दं कलयसि विलिप्तोऽसि न च तैः ॥

किं बहुना,

गच्छन्तो भूतलान्तेऽपि प्रखलन्त्यल्पमेधसः ।

त्वन्तु खलद्गतिर्नासि सत्यत्त्वान्नभस्यपि ॥

द्विजपते, भूयान् खलु मम त्वयि बहुमानः । कुतः ?

अवदातत्वमहिंसा द्विजत्वमित्यावयोः समा धर्माः ।

(सकरुणम्) ।

विरहाकुलितोऽस्मि सखे, दयितायास्त्वं पुनर्मा भूः ॥

यावत्प्रक्ष्यामि ।

(अनन्तरे चर्चरी) ।

अतुलपञ्चोदर विबुलजहणभरालस मज्ज सुकन्ती ।

दिट्ठो पइ पाराअन्न, काण्णए भमन्ती<sup>(१)</sup> ॥

भो विहगकुलललाम, यदि तावत्,

दृष्टा भवेत् प्रियतमा तरलायताची

कापि प्रियारसविशेषविशेषविज्ञ ।

आचक्ष्व मे विरहजर्जरिताय बन्धो,

प्रोढामशोकविकलः शरणागतोऽहम् ॥

अयं “वाग्वाकम्”—इत्याह । न खलु विदितमस्य,  
कं प्रति अस्मदीया प्रश्नवाक्,—इति । भवतु । विज्ञा-  
पयामि । भगवन्, विहगराज,

एषाऽनुयोगवाङ्मे प्रियया विस्लेषितस्य दैवेन ।

त्वां प्रत्येव दयालुं दयया शंसाशु साऽधुना कुत्र ? ॥

(क्षणं स्थित्वा) कथं न कथयति ! उपालभे तावदेनम् ।

हंहो विहगपते, स्थाने परेषामप्यात्मानुमानेन

प्रवृत्तिर्महात्मनाम् । कुतः पुनरयन्ते मन्दभाग्ये मयि

प्रतीपो व्यवहारः ?

(१) अतुलपयोधरा विपुलजघनालसा मम सुकान्ता ।

दृष्टा त्वया पारावतक, कानने भ्रमन्ती ॥

क्षणमपि भवान् कार्यस्यार्थे दयितां गताम्  
 अपि न सहते विच्छेदोत्यामुपैति गुरुव्यथाम् ।  
 कथमतितरां सारङ्गाच्या रहिते मयि  
 कथय करुणां कारुण्यार्हे न खल्ववलम्बते? ॥

(चर्चरिकायाऽवलोक्य) ।

कथमयं विस्फारितग्रीवो मूर्धानमाघूर्णयन् सगर्व्वं  
 पुनः पुनर्वाग्वाकमित्याह ! नूनमयमस्मदुपालम्भम-  
 सहमानः पापमेवैषा वागिति मामधिक्षिपति ।  
 धिक्कष्टं, एतादृशो मम दुरितपरिणामः, यद्यमपि  
 नाम एतावन्तमप्युपालम्भं न सहते !

(द्विपदिकाया निरूप्य) ।

कथमयमधिक्षिप्यैव मां कलत्रानुवृत्तौ प्रवृत्तः !  
 (सखेदम्) सर्व्वथा परिभवास्पदं भाग्यविपर्य्ययः ।

(परिक्रम्यावलोक्य च) ।

हन्त हन्त, कथमियमसौ प्रियतमा मे सरसि निम-  
 ज्जति ! अहह,

एतन्मुखं विकचतामरसप्रकाशं

लोलभ्रमद्भ्रमरविभ्रमलोचनान्तम् ।

आलक्ष्यते सरसि मज्जदिव प्रियायाः

मद्भाग्यविन्दुरिव दुर्गतनीरसिन्धौ ॥

यावत् सम्भावयाम्येनाम् ।

(जम्भलिका) ।

विरज्जन्मात्रविआरत्रो ददत्रालाहलालसत्रो ।

सरवरुस्सङ्गानुगतो तम्मद् भमिआरण्त्रो<sup>(१)</sup> ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) ।

कथमयं सरित्यतिस्तरङ्गहस्तैरिमां धर्षयति! उपा  
लभे तावदेनम् । (अञ्जलिं बद्धा) ।

न खलु शैवलिनौदयित, त्वया

प्रियतमा मम धर्षयितुं क्षमा ।

व्यसनितोऽपि न जातु महाशयः

परकलत्ररुचिः खलु सज्जनः ॥

(उपसृत्य द्विपदिकया निरूप्य । साखम्) ।

कथम् !

परमार्थकमलमेतत् न पुनः स्मेराननं प्रियतमायाः ।

इदमपि मधुकरमिथुनं विभ्रममूले न लोचने तस्याः ॥

(इति मूर्च्छितः पतति । उत्थायोपविश्य विभाव्य च) ।

अहह, प्रतारितोऽस्मि । कुतः पुनरस्यां रात्रौ कमल-  
विकाशः ? नूनं मुखमेतत् भविष्यति । भवतु ।  
पुनरपि निरूपयामि ।

(चर्चुरिकयोत्थाय निरूप्य, सविषादम्) ।

कथं सत्यमेव कमलम्! तत् किमिदं दिनं भवेत् ?

(१) विरहोन्मादविकारकः दयितालाभलालसकः ।

सरोवरोत्सङ्गानुगतः ताम्यति भ्रमितारण्यकः ॥



(द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य) ।

असंशयं रात्रिरियम् । (सवितर्कम्) कथं मत्प्रतारणा-  
व्यसनिना दैवहतकेन समयोऽपि लङ्घितः ! (विभाव्य)  
अथवा । तपस्विजनाध्युषिता देवभूमयश्चैवमादयः  
प्रदेशाः, तत्सर्वमुपपद्यते ।

(निःश्वस्य) अहह, परिश्रान्तोऽस्मि । न खल्वतः परं  
शक्नोमि प्रियामन्वेष्टुम् । यावदिहैव तरङ्गवातसुलभे  
सरस्तटे क्षणं विश्रामं करोमि । (इति सविषादमुपविश्य  
स्थितः) ।

(आकर्ण्य, ससम्भ्रममुत्तिष्ठन्) ।

हन्त हन्त, पश्चिमेनारण्यं हंसाः कूजन्ति । नूनमि-  
दानीमुपलब्धः प्रियोदन्तो भविष्यति । कुतः ?

कूजितमनुहरतीदं हंसानां नूपुरस्य दयितायाः ।

शिञ्जितमिचतां शङ्के जानन्त्येते प्रियोदन्तम् ॥

कथमन्यथा एतादृशस्य कूजितस्याधिगमो हंसा-  
नाम् ? स्थाने खल्वाकर्णितेनानेन कूजितेन मानसं  
मे समाश्वसिति ।

तथाहि,

आकर्ण्य दूरादपि कूजितानि

योगीव साक्षादशरीरवाचम् ।

स्थाने मनोनिर्वृतिमभ्युपैति

चक्षुः परोक्षं तदिदं वदन्ति ॥

(विचिन्त्य) न खलु प्रत्येमि । कुतः ?

ये तावद्व्ययिताप्रवृत्तिविधये भूयो मयाऽभ्यर्थिता-  
स्तेषां मथ्यवधीरणा कथमपि प्रायोऽधुना युज्यते ।  
आत्माऽप्येष विवेकमन्यरतया मद्भाग्यदोषेण वा  
मामुच्चैर्गल्पयत्यरातिरिव तां सम्भावयन्नन्यथा ॥

(इति सकरुणं निःश्वस्य) ।

भवतु । पश्यामि ।

(परिक्रम्य दूरादवलोक्य च सहर्षम्) ।

कथम् !

सन्तर्पणमतिमात्रं कूजितमेतन्न राजहंसानाम् ।

विभ्रमविशेषभूमिर्नूपुरशिञ्जितमिभेन्द्रगामिन्याः ॥

(सवितर्कम्) अपि नाम ममैव कौमुदी भवेत् ? अथवा ।  
नास्ति ममाधन्यस्य एतादृशं सौभाग्यम् । नूनमप्स-  
रसामयं सञ्चारः । निरूपयामस्तावत् ।

(इति सत्वरं परिक्रामति) ।

(खण्डधारा) ।

पिअविरहाउलमाणसत्रो विविणे अहिअं वाउलओ ।

ददअपेक्खणणिव्वदओ हरिसङ्गच्छद जुआणओ<sup>(१)</sup> ॥

(ततः प्रविशति कौमुदी-सुन्दरी-सालङ्कायन-परिव्राजिकाः) ।

(१) प्रियाविरहाकुलमानसकः विपिने अघिकं व्याकुलकः ।

दयिताप्रेक्षणनिर्वृतकः हर्षं गच्छति युवकः ॥

सुधा । (विलोक्य) कथं कौमुदीव दृश्यते! (उन्मृज्य चक्षुषी ।

निरूप्य) कथं सत्यमेव कौमुदी! (इति मूर्च्छितः पतति) ।

परि । वत्से, कौमुदि, अविलम्बं सम्भावयैनम् ।

कौमु । (सत्वरमुपसृत्य) अम्म, कथं एरिसीं दसां गद्दे अज्ज-

उत्तो<sup>(१)</sup> ! (इति मूर्च्छिता पतति) ।

(सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति) ।

साल । वयस्य, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

सुन्द । सहि, समस्वस समस्वस<sup>(२)</sup> ।

परि । वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । वत्स, समा-  
श्वसिहि समाश्वसिहि ।

कौमु । (समाश्वस्य) अज्जउत्त, समस्वस समस्वस<sup>(३)</sup> ।

सुधा । (समाश्वस्य, कौमुदीं विलोक्य सहर्षविस्मयम्) कथम्!

सैषा मम प्रियतमा कमनीयकान्तिः

(सुन्दरीमवलोक्य) ।

सेयं सखी

(परिव्राजिकामवलोक्य) ।

भगवतीयम्

(सालङ्कायनमवलोक्य) ।

(१) अहो, कथमोटुषीं दशां गत आर्यपुत्रः !

(२) सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

(३) आर्यपुत्र, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अयं वयस्यः ।

( साश्चर्यम् )

उत्पातवातविगमेऽधिकदर्शनीयो-

दिश्याऽभवन्मम सएव हि जीवलोकः ॥

परिव्राजिकासालङ्कायनौ । यथाऽऽह भवान् ।

कौमुदीसुन्दर्यौ । एवं णु एदं । विसेसदो मह  
मन्दभाद्रणीए<sup>(१)</sup> ।

सुधा । (उत्थाय) भगवति, वन्दे । (इति प्रणमति) ।

परि । समीहितसिद्धिर्भूयात् । वत्स, क्लिष्टोऽसि । क्षण-  
मात्रं तावत् विश्राममनुभव ।सुधा । भगवतीप्रसादेनैवानुभूतो विश्रामः । (कौमुदीं  
प्रति) प्रिये,

त्वद्विप्रयोगतमसोन्मथितेन वार्त्ता

पृष्टा मया तरुलताविहगादयोऽपि ।

सम्भाव्य ते मुखमितीन्दुसरोजमस्मि

प्राप्तो न खल्विह न सह्यमथाभिषङ्गम् ॥

किं बज्जना,

जन्मान्तरादिवोत्तीर्णस्त्वद्वियोगतमोऽर्णवात् ।

दिश्या त्वां प्राप्तवानस्मि च्युतां मृत्युमुखादिव ॥

कौमु । हृद्दी हृद्दी, मह मन्दभाद्रणीए कए एरिसीं

(१) एवं नु इदं । विशेषतो मम मन्दभागिन्याः ।



दसां पत्तो अज्जउत्तो ! अबराद्धा म्हि अज्जउत्तस्स<sup>(१)</sup> ।  
सुधा । प्रिये, अपराधइति न खल्वधिगच्छामि । क-  
थ्यतां तावदुदन्तः ।

कौमु । सुणादु अज्जउत्तो । तहिं दिअहे साअंतण-  
कम्मस्स गदे क्वु अज्जउत्ते ललिदुज्जाणसेहावलो-  
अणकुदूहला मन्दभाइणी तथ्य गदा म्हि<sup>(२)</sup> ।

सुधा । श्रुतमेतावदस्माभिः । ततस्ततः ?

(सर्वे समुत्सुकमाकर्णयन्ति) ।

कौमु । तदो कावि विअडवेससरीरा पिसाअरी विअ  
सहसा मङ्गेण्हअ सुस्समग्गमुप्पदिदा । एत्तिअमत्तं  
अहं सुमरामि । तदो भअवदीए परित्तादा म्हि<sup>(३)</sup> ।  
परि । परतः श्रूयताम् । अहं किल निर्व्विकल्पक-  
समाधिं परिचेतुमिहागत्य विन्दुमतीप्रपाते नियमि-  
तप्राणा योगानुष्ठानमकरवम ।

साल । ततस्ततः ?

(१) हाधिक् हाधिक्, मम मन्दभागिन्याः कृते ईदृशीं दशां प्राप्त आर्य्यं पुत्रः ! अपराद्धाऽस्मि आर्य्यपुत्रस्य ।

(२) शृणोतु आर्य्यपुत्रः । तस्मिन् दिवसे सायन्तनकर्मणो गते खल्वार्य्यपुत्रे ललितोद्यानशोभाऽवलोकनकुतूहला मन्दभागिनी तत्र गताऽस्मि ।

(३) ततः काऽपि विकटवेषशरीरा पिशाचीव सहसा मां गृहीत्वा शून्य-  
मार्गमुत्पतिता । एतावन्मात्रमहं स्मरामि । ततो भगवत्या परित्राता-  
ऽस्मि ।

सुधा । न खलु भवानप्यनभिज्ञो वृत्तान्तस्य ?

साल । अथकिम् । तादृशे सख्युपसृत्ते भवतोऽपि प्रवृत्ति-  
मविदुषा व्याकुलेन भगवत्याश्रमं गतवता भगवती-  
शिष्याद्देवतादुपलब्धभगवतीवृत्तान्तेन उपायान्त-  
रमपश्यता मयाऽपि (सुन्दरीमङ्गल्या दर्शयन्) अनया सह  
अस्मिन्नेव क्षणे समासादिता तत्रभवतीद्वितीया  
भगवती ।

सुधा । ततस्ततः ?

साल । ततः प्रणिधानावगतभवद्वृत्तान्ताया भगवत्या-  
एवाज्ञया सममेव सर्व्वे वयं परिक्रान्ताः । ततश्चोप-  
लब्धोभवान् । इत्येतावत्यस्माकं प्रवृत्तिः । अतो वय-  
मप्यनभिज्ञाः वृत्तान्तस्य । (परिव्राजिकां प्रति) । अपनय-  
तु भगवती कुतूहलमस्माकम् ।

परि । श्रूयताम् । तथाविधध्यानावस्थिताया मम,  
अकस्मात्,

(कौमुदीं निर्दिशन्ती) ।

अस्याः समाक्रन्दितमाकुलाक्ष्याः

समाधियोगं निविडं विभेद ।

सूचीव्यधोवक्षसि गाढलघो-

मोहं वलीयांसमिव क्षणेन ॥

सुधा । कथमेवं गतस्यापि मम भागधेयपरावृत्तिः !  
 अथवा । भगवतीप्रसादोऽत्र प्रभवति । ततस्ततः ?  
 परि । ततोऽहं व्युत्थानमापन्ना दृशमितस्ततो व्यापार-  
 यन्ती दूराद्देवमपश्यम् ।

मिथ्यादृष्टिरिव अङ्गामाकुलामकलङ्किनीम् ।

बलात्कर्षति कल्याणीमिमां कङ्कालमालिनी ॥

(कौमुदीसुन्दर्यौ भयं नाटयतः) ।

सुधाकरसालङ्कायनौ । (कौमुदीसुन्दर्यौ प्रति) भीरु, अल-  
 मावेगेन ? अतीतं खल्वेतत्कथ्यते । (परिव्राजिकां प्रति)  
 ततस्ततः ?

परि । ततोऽहमिमामशरणां परिचातुकामा कारुण्या-  
 मर्षविवशा यावत् तमुद्देशं गन्तुं प्रवृत्ता, तावत्,

दूराद्दृष्ट्वा मामुपारूढशङ्का

जातामर्षा गाढमेतामुपेक्ष्य ।

यावद्ध्रुन्तुं सोद्धृतं सञ्चचाल

तावद्घोरे गङ्गरेऽस्मिन् पपात ॥

(इति गङ्गरमङ्गल्या दर्शयति) ।

(सर्व्वे विस्मयं नाटयन्ति) ।

सुधा । भगवति, खेचरीसिद्धिस्तथा समासादितेति  
 श्रूयते, तत् कुतइदम् ?

परि । श्रयतान्तावत् परतः, ततोज्ञास्यते यतइदम् ।

साल । आज्ञापयतु भगवती ।

परि । ततोयावद्दहं विस्मितेन मनसा तस्याः प्रैपातं  
पर्यालोचयं, तावद्शरीरिणी वागुदचरत् ।

सुधा । कीदृशी पुनः सा ?

परि । पतिव्रताधर्षणतीव्रपापै-  
र्विलुप्तयोगाचरणप्रभावा ।  
अधोगतिं याति तपस्विनीयं  
दुष्टस्वभावा व्यसनानुरूपाम् ॥

ईदृशी सा ।

(सर्वे विस्मयं नाटयन्ति) ।

कौमु । (सविषादमात्मगतम् ) हृद्दी हृद्दी, कथं मह एव मन्द-  
भाङ्गीय कए दुग्गई तीसे<sup>(१)</sup> !

सुधा । (सहृषं कौमुदीं प्रति) प्रिये,

त्वया खलु विशालाक्षि, विभ्रत्या धाम निष्कलम् ।

पावितं कुलमस्माकं वयमेव न केवलम् ॥

कौमु । (जनान्तिकम्) पिअंवदअ, किं मं लज्जेसि<sup>(२)</sup> ?

परि । अत्यल्पमिदमुच्यते, कुलमिति । पृथिवीति भण ।

साल । यथाऽऽज्ञापयति भगवती ।

(१) हाधिक् हाधिक्, कथं ममैव मन्दभागिन्याः कृते दुर्गतिस्तस्याः !

(२) प्रियं वदक, किं मां लज्जयसि ?



परि । महत् खल्वेतत् पुण्यमयत्नसुलभं स्त्रीणामा-  
मनन्ति, यत् पातिव्रत्यं नाम । वयमप्यस्याः समा-  
गमात् पवित्राः स्म । तथाहि,

परतत्त्वपरिस्फूर्त्तिर्न तथा योगचर्यया ।

(कौमुद्याश्चिबुकमुन्नमय्य) ।

अपांशुलायाः कौमुद्याः सन्निकर्षात् यथा मम ॥

कौमु । कथं भञ्जवदी वि णाम मन्दभाङ्गिणीं मं अवर-  
हिणीं कुण्ड<sup>(१)</sup> !

परि । कल्याणि, मा मैवम् ।

देवतास्त्वां स्तुवन्त्युच्चैर्वयमेव न संस्तुमः ।

सदृत्तं स्तूयते लोके न खल्वस्य समाश्रयः ॥

अशरीरिणी वागेवाच प्रमाणम् ।

सुधा । कथं तादृशकठोरतपःपरायणाऽपि अभिभूयते स्म  
किल्बिषैरिति यत्सत्यं नास्ति नियतेरनभिभवनीयं  
नाम ।

परि । वत्स, नेदमाश्चर्य्यकारणम् । अपरिपक्वयोगाचारा  
हि सा स्वभावमलिनाशया न खलु निर्मलान्तरा  
संवृत्ता । यतः,

(१) कथं भगवत्यपि नाम मन्दभागिनीं मामपराधिनीं करोति !

भूयोऽनलसंयोगात् मृत्सा रूपान्तरं चिराद्भजते ।  
न खलु कथञ्चित् पक्वा मध्ये श्यामा बहिर्न रक्ताऽपि ॥

अपिच,

लौहधातुर्विशेषेण रञ्जितः काञ्चनद्रवैः ।  
बहिः काञ्चनवर्णोऽपि न तद्भावं प्रपद्यते ॥

साल । वयस्य, यथाऽऽज्ञापयति भगवती । नैतत् विस्म-  
यास्पदं; यत् तादृशस्य योगाचारस्याधिगमः, यच्च  
महतस्तपसोऽप्येकपदएव व्ययः । तथाहि,

किं दुर्जना नातिचिरादकाण्डे  
भवन्ति सत्यं पृथुवृद्धिभाजः ।  
तेषां न खल्वेकपदे समस्त-  
व्ययोऽप्यकस्मान्न, किमत्र चित्रम् ॥

परि । वत्स, सम्यगाह सालङ्कायनः । तदिदानीम्,  
सागरेणैव गङ्गेयं भवता परिगृह्यताम् ।  
वृथैव दुर्जनैः शैलैरिव व्याकुलिता भृशम् ॥

(इति कौमुदीमर्षयति) ।

सुधा । (कौमुदीं प्रतिगृह्य) सबहुमानं प्रतिगृहीतो भगवती-  
प्रसादः ।

परि । वत्स, प्रतिहतास्ते प्रत्यूहाः । तदतः परं मत्प्रसा-  
दात्,

उपस्रवात्यये वत्स, भूयोविशदयाऽनया ।

निरन्तरायं दीप्यस्व कौमुद्येव सुधाकरः ॥

सुधा । जानामि तनयेष्विवानुग्रहमस्मासु भगवत्याः ।

परि । इदमपरं विज्ञाप्यसे । इतः परं निर्व्यलीकेन

मनसा दीर्घकालं समाधियोगमवलम्बिष्ये । तदुच्य-

तां, किन्ते भूयः प्रियं करोमि ?

सुधा । अतः परमपि प्रियमस्ति ? तथापीदमस्तु ।

(भरतवाक्यम्) ।

प्रणयिनां प्रणयामृतदीधिति-

विरहराजसमाक्रमणोज्झितः ।

अकलुषः शरदीव जलाशयो-

मनद्वास्त्रमलं परिदीप्यताम् ॥

अपिच,

कवीनां स्नाय्योक्तावकलुषधियः सन्तु सुधियः

सतामप्यन्योन्यं भवतु न चिरात् सङ्गतमिह ।

सदा भूयाद्भूयोव्यसनमपि शास्त्रेषु कृतिनां

ममोच्चैः संसारक्लममखिलमीशः क्षपयतु ॥

परि । एवमस्तु ॥

(निष्क्रान्ताः सर्व्वे) ।

इति कौमुदीसुधाकरे प्रकरणे पञ्चमोऽङ्कः ॥

समाप्तञ्चेदं प्रकरणम् ॥

















LC FT. MEADE



0 019 248 115 6